भारत 2017 मानव अधिकार रिपोर्ट

कार्यकारी सारांश

भारत द्विसदनीय विधायिका वाला एक बहुदलीय, संघीय, संसदीय लोकतंत्र है। राष्ट्रपति, जो कि संसद और राज्य विधानसभाओं से बने निर्वाचक मंडल द्वारा चुना जाता है, राष्ट्राध्यक्ष होता है, और प्रधानमंत्री सरकार का अध्यक्ष। संविधान के अंतर्गत 29 राज्यों और सात केंद्र शासित प्रदेशों को उच्च-स्तरीय स्वायत्ता प्राप्त है, तथा क़ानून और व्यवस्था का मुख्य दायित्व उन्हीं का है। मतदाताओं ने जुलाई में 5 वर्ष की अवधि के लिए राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद को चुना, और सन् 2014 के आम चुनावों में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन की जीत के बाद नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बने। प्रेक्षकों ने इन चुनावों को, जिनमें 55 करोड़ 10 लाख से अधिक भागीदार शामिल थे, हिंसा की इक्का-दुक्का घटनाओं के बावजूद, स्वतंत्र और निष्पक्ष माना।

असैनिक अधिकारियों ने सुरक्षा बलों पर कारगर नियंत्रण बनाए रखा।

मानवाधिकारों से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण मामलों में पुलिस और सुरक्षा बलों के दुर्व्यवहार शामिल थे, जैसे कि न्यायेतर हत्याएं, लोगों का गायब हो जाना, उत्पीड़न, मनमाने ढंग से गिरफ़्तारी और हिरासत, बलात्कार, कठोर और जीवन-जोखिम वाली बंदीगृह परिस्थितियां, तथा मुक़दमे से पहले लंबी हिरासत। व्यापक भ्रष्टाचार; कुछ राज्यों में राजनीतिक बंदियों की रिपोर्टें; संचार माध्यमों के, जिनमें कुछ सरकार की आलोचना करने वाले भी शामिल हैं, उत्पीड़न और सेंसरशिप की घटनाएं जारी रहीं। कुछ ग़ैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) के विदेशी निधीयन पर सरकारी पाबंदियां लागू थीं, जिनमें ऐसे विचारों वाले एनजीओ शामिल हैं जो सरकार के कथनानुसार "राष्ट्रीय हित" में नहीं हैं, जिससे इन एनजीओ के कामों में कमी आई। आठ राज्यों में धर्म-परिवर्तन पर क़ानूनी पाबंदियां; बलात्कार, घरेलू हिंसा, दहेज संबंधी मौतों, सम्मान के नाम पर हत्याओं, यौन उत्पीड़न संबंधी मामलों में अपराधिक तहक़ीकातों अथवा उत्तरदायित्व का अभाव; तथा महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध भेदभाव गंभीर समस्याएं बने रहे। धार्मिक सम्बद्धता, यौन अभिमुखता, तथा आदिवासियों सहित कबीले अथवा जाति के आधार पर हिंसा तथा भेदभाव भी, उत्तरदायित्व के अभाव के कारण जारी रहा।

सरकार के सभी स्तरों पर दुराचार के लिए उत्तरदायित्व का अभाव जारी रहा, जिसने व्यापक दण्डाभाव में योगदान किया। अलग-अलग मामलों में तहक़ीकातें हुईं और मुक़दमे चले, लेकिन ढुल-मुल प्रवर्तन, प्रशिक्षित पुलिस अधिकारियों की कमी, तथा अत्यधिक बोझ तले दबी और संसाधनों की कमी से ग्रस्त अदालत प्रणाली के कारण दोष-सिद्धियों की संख्या कम रही।

जम्मू-कश्मीर राज्य, उत्तर पूर्व, और माओवादी प्रभावित इलाकों में पृथकतावादी विद्रोहियों ने गंभीर दुर्व्यवहार किए, जिनमें सशस्त्र सेना के लोगों, पुलिस, सरकारी अधिकारियों और नागरिकों की हत्याएं और उन्हें यातनाएं देना, और बाल सैनिकों की भर्ती और उनका इस्तेमाल शामिल है।

खंड 1. व्यक्ति की अखंडता का सम्मान जिसमें निम्नांकित से स्वतंत्रता शामिल है:

ए. मनमाने ढंग से जीवन हरण तथा अन्य ग़ैरक़ानूनी अथवा राजनीति प्रेरित हत्याएं

ऐसी रिपोर्टें थीं कि सरकार और उसके एजेंटों ने मनमाने ढंग से अथवा ग़ैर-क़ानूनी हत्याएं कीं जिन में संदिग्ध अपराधियों और विद्रोहियों की न्यायेतर हत्याएं शामिल हैं।

इस वर्ष के दौरान दक्षिण एशियाई आतंकवाद पोर्टल ने, जिसका संचालन संघर्ष प्रबंध का अलाभकारी संस्थान करता है, 2 जून तक 111 नागरिकों, सुरक्षा बलों के 15 सदस्यों, तथा 210 आतंकवादियों अथवा विद्रोहियों की मौत की रिपोर्ट दी। इस संस्थान के आंकड़े यह भी दर्शाते हैं कि जम्मू-कश्मीर राज्य में सन् 2016 में 329 के मुक़ाबले इस वर्ष अगस्त तक आतंकवादी हिंसा के कारण 317 मौतें दर्ज कीं गईं।

गृह मंत्रालय के 2016-17 के आंकड़ों के अनुसार राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (एनएचआरसी) के तहक़ीकात विभाग के देशव्यापी आकलन के अनुसार "मुठभेड़ मौतों" के -- जिस शब्दावली का इस्तेमाल सुरक्षा अथवा पुलिस बलों और कथित अपराधियों अथवा विद्रोहियों के बीच ऐसी किसी भी मुठभेड़ को बयान करने के लिए किया जाता है जिसके परिणाम स्वरुप किसी की मौत हो जाए -- परिणाम स्वरुप 108 मौतों की रिपोर्टें सामने आईं।

6 जून को, मध्यप्रदेश में एक प्रतिवाद प्रदर्शन के दौरान पुलिस ने 6 लोगों को मार डाला। मध्य प्रदेश सरकार ने पुलिस की कार्यवाही की तहक़ीकात के लिए एक सदस्य आयोग नियुक्त किया और हर पीड़ित के परिवार को एक करोड़ रुपए (160,000 डॉलर) प्रदान किए। वर्ष के अंत तक तहक़ीकात पूरी नहीं हुई थी।

हिरासत में मौत के मामलों की रिपोर्ट मिलना जारी रहा, जिनमें पुलिस की हिरासत में क़ैदियों अथवा बंदियों को या तो मार डाला गया या वे मर गए। कुछ मामलों में साक्ष्यों की रिपोर्टों के बावजूद, केंद्रीय और राज्य अधिकारियों द्वारा पुलिस अथवा सुरक्षा अधिकारियों पर मुक़दमे न चलाने के निर्णय एक समस्या बने रहे। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) ने सन् 2016 में राष्ट्र भर में हिरासत में मौत के 92 मामलों की रिपोर्ट दी जिसमें सबसे ज़्यादा, 16 मामलों, की रिपोर्ट महाराष्ट्र से आई। मध्य प्रदेश और गुजरात ने 11 मामलों और उत्तर प्रदेश ने 9 मामलों की रिपोर्ट दी। एक मीडिया रिपोर्ट के अनुसार, "सूचना के अधिकार" (आरटीआई)

की याचिका के प्रत्युत्तर में एनएचआरसी ने बताया कि 1 जनवरी से 2 अगस्त के बीच 74 लोग पुलिस की हिरासत में मर गए।

24 जुलाई को सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार के केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) तथा मध्य प्रदेश राज्य सरकार से छात्रों के अवैध-घोषित भारत के इस्लामी आंदोलन के उन आठ संदिग्ध सदस्यों की अक्टूबर 2016 में हुई हत्या की अदालती-निगरानी में चल रही तहक़ीकात के बारे में ताज़ा जानकारी मांगी, जो कथित रूप से, एक प्रहरी को मारकर एक उच्च सुरक्षा कारागार से भाग निकलने के बाद, मारे गए थे। नवंबर 2016 में एनएचआरसी ने राज्य सरकार, पुलिस, और कारागार अधिकारियों के ख़िलाफ़ एक औपचारिक शिकायत जारी की थी जिसमें इस पर संदेह व्यक्त किया गया था कि वे लोग भागने का प्रयास करते समय मारे गए, बल्कि इसे हिरासत में मौत की श्रेणी में रखा था। मारे गए एक व्यक्ति की महिला रिश्तेदार ने, सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल अपनी याचिका में, इस बात पर मध्य प्रदेश सरकार की आलोचना की थी कि उसने केवल एक-व्यक्ति वाला जांच आयोग नियुक्त किया।

25 अक्टूबर को, सीबीआई की एक विशेष अदालत ने 16 क़ानून प्रवर्तन अधिकारियों पर सोहराबुद्दीन शेख और तुलसीराम प्रजापति की मुठभेड़-मौत में उनके कथित उलझाव के लिए आरोप दायर किए। कथित रूप से राजस्थान और गुजरात के एक संयुक्त आतंक विरोधी दस्ते ने नवंबर 2005 को अहमदाबाद के निकट एक सड़क पर शेख को मार डाला; बाद में, पुलिस ने कथित रूप से उसकी पत्नी कौसर बी, और मामले में एक महत्वपूर्ण गवाह तुलसीराम प्रजापति को मार डाला। सीबीआई के कथनानुसार, अभियुक्तों के ख़िलाफ़ आरोप दाख़िल नहीं किए गए जिनके आवेदन मुंबई उच्च अदालत अथवा सर्वोच्च अदालत में लंबित थे।

25 मार्च को, मद्रास की उच्च अदालत ने तमिलनाडु सरकार को रमेश नाम के व्यक्ति के, जो "नम्बू" नाम से जाना जाता है, परिवार को दस लाख रुपए (16,000 डॉलर) अदा करने का आदेश दिया, जो सन् 2010 में उस समय कथित रूप से यातना दिए जाने के बाद मर गया जब वह चोरी के संदेह में पुलिस की हिरासत में था। अदालत ने तमिलनाडु सरकार के नगर प्रशासन सचिव पर इस बात के लिए 50 हज़ार रुपये (800 डॉलर) जुर्माना भी लगाया कि वह पीड़ित के परिवार को मुआवज़ा देने में नाकाम रहा। पुलिस के अतिरिक्त महानिदेशक द्वारा मामले की जांच से जुलाई में इस बात की पुष्टि हुई कि नम्बू के साथ उसकी अवैध हिरासत के दौरान "दुर्व्यवहार" किया गया और वह इस व्यवहार के परिणाम स्वरुप मर गया।

तीन व्यक्ति अलग-अलग घटनाओं में कथित यातना के कारण उस समय मर गए जब वे तेलंगाना राज्य पुलिस की हिरासत में थे। 7 अप्रैल को, मोहन कृष्ण हैदराबाद में बेगमपेट पुलिस स्टेशन से लौटने के बाद अस्पताल जाते हुए रास्ते में मर गया, जहां वह एक नाबालिग के कथित यौन उत्पीड़न के मामले में हिरासत में था और

उससे पूछताछ की गई थी। 21 अप्रैल को, एक व्यक्ति, जिसकी "गणेश" नाम से पहचान की गई, हैदराबाद के निकट हयातनगर पुलिस स्टेशन में सड़क पर "संदिग्ध गतिविधि" के बारे में पूछताछ के बाद अस्पताल जाते हुए रास्ते में मर गया। 18 मार्च को, भीम सिंह एक झगड़े के बाद पूछताछ के लिए हैदराबाद पुलिस स्टेशन में रोके जाने के बाद मर गया। इस सब मामलों में पुलिस ने इस बात से इनकार किया कि हिरासत में लिए गए लोगों को यातनाएं दी गईं, और पुरानी बीमारियों को उनकी मौत का कारण बताया।

सशस्त्र बल विशेषाधिकार क़ानून (एएफएसपीए) नगालैंड, मणिपुर, असम, और मिज़ोरम के कुछ भागों में लागू रहा, तथा इस क़ानून का एक रूपांतर जम्मू और कश्मीर राज्य में लागू था। सरकार ने असम से लगने वाले मेघालय के सीमावर्ती क्षेत्रों और अरुणाचल प्रदेश के 3 ज़िलों को भी अगस्त से अक्टूबर तक दो और महीनों के लिए "अशांत" घोषित कर दिया। जबकि नगालैंड सरकार ने राज्य में एएफएसपीए उठा लिए जाने की मांग की, केंद्र सरकार ने इसे दिसंबर के अंत तक के लिए बढ़ा दिया।

एएफएसपीए के अंतर्गत, केंद्रीय सरकार द्वारा किसी राज्य अथवा केंद्र शासित प्रदेश को "अशांत क्षेत्र" घोषित किए जाने से सुरक्षा बलों को राज्य में "क़ानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए" घातक शक्ति का इस्तेमाल करने तथा ऐसे किसी भी व्यक्ति को "जिसके ख़िलाफ़ तर्कसंगत संदेह मौजूद हो" उसे गिरफ़्तारी का आधार बताए बिना गिरफ़्तार कर लेने का अधिकार मिल जाता है। यह क़ानून सुरक्षा बलों को उन क्षेत्रों में किए गए कार्यों के लिए नागरिक मुक़दमों से निरापदता भी प्रदान करता है जहां एएफएसपीए लागू हो, हालांकि सन् 2016 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि किसी अशांत क्षेत्र में सशस्त्र बलों के हाथों हुई हर मौत की, चाहे वह आतंकवादी की हो या आम आदमी की, पूरी तरह जांच की जानी चाहिए, साथ ही यह भी कहा था कि क़ानून समान रूप से लागू होना चाहिए।

एएफएसपीए को हटाये जाने के लिए, ख़ास तौर पर उन क्षेत्रों में जहां विद्रोही हमलों में उल्लेखनीय कमी महसूस की गई है, काफ़ी जन समर्थन देखा गया। मानवाधिकार संगठनों ने भी पिछले वर्षों के दौरान मानवाधिकारों के अनेकों उल्लंघनों का हवाला देते हुए इस क़ानून को रद्द किए जाने की मांग जारी रखी। 14 जुलाई को सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई को निर्देश दिया कि मणिपुर में 1979 और 2012 के बीच पुलिस, सेना, और अर्धसैनिक बलों द्वारा कथित 1,528 हत्याओं में से कम से कम 87 की जांच के लिए एक पाँच-सदस्यीय दल स्थापित करे। यह आदेश पीड़ितों के परिवारों और एनजीओ द्वारा दाखिल एक याचिका के जवाब में जारी किया गया। अधिकार सक्रिय वादियों के अनुसार, मध्य दिसंबर तक सीबीआई ने किसी भी पीड़ित या गवाह को नहीं बुलाया था और वह अदालतों तथा मणिपुर सरकार से हत्याओं से संबंधित दस्तावेज़ ही जमा

कर रहा था। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में कहा गया था कि सीबीआई को 31 दिसंबर तक औपचारिक आरोप अवश्य दर्ज करने चाहिएं।

राष्ट्रमंडल मानवाधिकार पहल नामक एनजीओ ने अपनी 2016 की रिपोर्ट में ध्यान दिलाया कि सन् 2012 और 2016 के बीच एएफएसपीए के अधीन राज्य में सशस्त्र बलों के विरुद्ध मानव अधिकार उल्लंघनों की जो 186 शिकायतें दर्ज़ की गईं, उनमें 49.5 प्रतिशत जम्मू और कश्मीर राज्य से थीं। लेकिन आरटीआई क़ानून के तहत गृह मंत्रालय द्वारा दिए गए आंकड़ों से यह संकेत नहीं मिलता कि क्या इन शिकायतों को योग्यतापूर्ण माना गया।

27 जून को, गुजरात उच्च न्यायालय ने अतुल वैद्य को जमानत दे दी, जो कि उन 24 लोगों में से एक था जिन्हें सन् 2002 में गुलबर्ग सोसायटी हत्याओं का दोषी पाया गया था, जब एक सांप्रदायिक अशांति के दौरान उपद्रव कर रही भीड़ ने 69 लोगों को मार डाला था। गुजरात सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त विशेष तहक़ीकात को, दोषी पाए गए 24 लोगों में से कुछ को दी गई सज़ाओं को बढ़ाने अथवा अन्य 14 अभियुक्तों को बरी किए जाने को चुनौती देने के लिए, सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की इजाज़त नहीं दी। 5 अक्टूबर को गुजरात हाईकोर्ट ने ज़किया जाफ़री की दलील रद्द कर दी और, यह कहते हुए कि सन् 2002 के दंगों में "एक बृहत्तर षड्यंत्र" के उनके आरोपों के लिए मुक़दमा चलाए जाने योग्य साक्ष्यों का अभाव है, निचली अदालत के गुजरात सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों को बरी कर देने के फ़ैसले को बरक़रार रखा। अदालत ने जाफ़री को उच्चतर अदालतों में अपील करने की इजाज़त दे दी।

ग़ैर-सरकारी बलों ने, जिनमें संगठित विद्रोही और आतंकवादी शामिल हैं, जम्मू और कश्मीर राज्य, उत्तर पूर्वी राज्यों, और माओवादी प्रभावित क्षेत्रों (देखे खंड-1.जी) में बहुत सी हत्याएं और बमबारियां कीं। झारखंड और बिहार में माओवादियों ने सुरक्षा बलों, और सड़कों, रेलवे, तथा संचार टॉवरों जैसी मूल ढांचागत सुविधाओं, पर हमले जारी रखे। 25 अप्रैल को, माओवादी विद्रोहियों ने छत्तीसगढ़ में एक काफ़िले पर हमला किया और केंद्रीय रिज़र्व पुलिस बल के 25 कर्मियों को मार डाला तथा 6 को बुरी तरह ज़ख्मी कर दिया।

बी. गायब हो जाना

ऐसे आरोप थे कि पुलिस हिरासत में लिए गए लोगों की गिरफ़्तारी की आवश्यक रिपोर्ट दर्ज करने में नाकाम रही, जिसके परिणाम स्वरुप लापता हो जाने के सैकड़ों मामले अनसुलझे पड़े रहे। पुलिस और सरकारी अधिकारियों ने इन दावों का खंडन किया। केंद्रीय सरकार ने रिपोर्ट दी कि राज्य सरकार की जांच समितियों ने हिरासत में लिए गए लोगों की स्थिति के बारे में परिवारों को सूचित किया। लेकिन ऐसी रिपोर्टें थीं कि

कारावास प्रहरियों ने कई बार यह पुष्टि करने के लिए परिवार वालों से रिश्वत मांगी कि उनके रिश्तेदार हिरासत में हैं।

वर्ष के दौरान, संघर्ष वाले क्षेत्रों में गायब हो जाने की ऐसी घटनाएं घटित हुईं जिनके लिए सरकारी बलों, अर्धसैनिक बलों और विद्रोहियों को ज़िम्मेदार समझा गया (देखें खंड-1.जी).

सी. यातना तथा अन्य क्रूर, अमानवीय, अथवा अपमानजनक व्यवहार या सज़ा

क़ानून यातना की मनाही करता है लेकिन एनजीओ ने रिपोर्ट दी कि वर्ष के दौरान यातना की घटनाएं घटीं।

पुलिस द्वारा बंदियों की पिटाई के परिणाम में हिरासत में मौतें हुईं (देखें खंड-1.ए)

क़ानून अधिकारियों को जबरन स्वीकारोक्ति को साक्ष्य में शामिल करने की इजाज़त नहीं देता, लेकिन एनजीओ तथा नागरिकों का आरोप था कि अधिकारियों ने जबरन स्वीकारोक्तियों के लिए यातना का इस्तेमाल किया। कुछ मामलों में अधिकारियों ने मृत्युदंड मुक़दमों में ऐसी स्वीकारोक्तियों को साक्ष्य के रूप में दाखिल किया। कथित रूप से अधिकारियों ने धन ऐंठने के साधन अथवा सरसरी सज़ा के रूप में यातना का इस्तेमाल किया। मानवाधिकार विशेषज्ञों के अनुसार, सरकार ने रद्द कर दिए गए आतंकवाद निवारक क़ानून तथा आतंकवादी एवं विघटनकारी गतिविधि क़ानून के तहत गिरफ़्तार किए गए और अभियोग लगाए गए व्यक्तियों पर मुक़दमा चलाना जारी रखा। रद्द किए गए क़ानूनों के तहत, अधिकारी पुलिस अफ़सर के सम्मुख की गई स्वीकारोक्ति को अदालत में स्वीकार्य साक्ष्यों की तरह इस्तेमाल करते थे।

19 जून को, पुरातन वस्तुओं का व्यापारी अभय सिंह, कथित रूप से सात दिनों की यातना के बाद, ओडिशा में हिरासत में मर गया। पुलिस ने एक मोबाइल फ़ोन की चोरी की तहक़ीकात करने के लिए 30 मई को सिंह को हिरासत में लिया, बाद में उस पर नशीली दवा की तस्करी का आरोप लगाया, और 10 जून को उसे एक अस्पताल में स्थानांतरित किया, जहां बताया गया कि उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया। एनएचआरसी तथा ओडिशा राज्य के मानवाधिकार आयोग (एसएचआरसी) ने पुलिस की राज्य मानवाधिकार संरक्षण कोशिका को तहक़ीकात करने और रिपोर्ट दाख़िल करने का आदेश दिया। वर्ष के अंत तक इस मामले में कोई नई जानकारी सामने नहीं आई।

18 जुलाई को, निचली जाति के एक 19 वर्षीय आदमी ने, ख़बर है कि केरल के त्रिशूर ज़िले में एंगादियुर में ख़ुदकुशी कर ली, एक ही दिन पहले उसे मोटर वाहन पंजीकरण के समुचित दस्तावेज़ पास न होने के लिए पुलिस की हिरासत से रिहा किया गया था। उसके पिता और मित्रों ने इसके स्थान पर यह आरोप लगाया कि वह हिरासत के दौरान पुलिस की पाशविकता के कारण आई चोटों की वजह से मर गया, और शव-परीक्षा की रिपोर्ट ने यह पुष्टि की कि उसकी चोटें उत्पीड़न के समनुरूप थीं। पीड़ित के पिता की शिकायत के आधार पर,

अपराधिक कार्यप्रणाली संहिता तथा अनुसूचित जाति/अनुसूचित कबीलों के प्रति नृशंसता निवारक क़ानून के तहत, कई पुलिस अधिकारियों के ख़िलाफ़ मुक़दमा दर्ज किया गया। उस मौत के लिए दो पुलिस अधिकारियों को निलंबित कर दिया गया, और वह मामला आगे तहक़ीकात के लिए अपराध ब्यूरो को हस्तांतरित कर दिया गया।

यह रिपोर्टें मिलती रहीं कि पुलिस महिला और पुरुष बंदियों के साथ यौन बलात्कार करती है। सरकार ने एनएचआरसी को बलात्कार के ऐसे मामलों की तहक़ीकात करने का अधिकार दिया, जिनमें पुलिस अधिकारियों का उलझाव हो। क़ानून के अनुसार एनएचआरसी ऐसे मामलों के बारे में भी सूचना का अनुरोध कर सकता है जिनमें सेना या अर्धसैनिक बलों का उलझाव हो, लेकिन उन मामलों की तहक़ीकात करने का उसके पास कोई आदेश नहीं है। एनजीओ का दावा था कि एनएचआरसी ने पुलिस हिरासत में किए गए यौन बलात्कारों की संख्या को कम करके आंका। कुछ बलात्कार पीड़ित सामाजिक कलंक तथा प्रतिशोध की संभावना के कारण इन अपराधों की रिपोर्ट करने के अनिच्छुक थे, जिसे इस बोध के कारण और बल मिलता है कि निरीक्षण और उत्तरदायित्व का अभाव है, ख़ासतौर पर तब जबकि अपराधकर्ता पुलिस अफ़सर या अन्य अधिकारी हो। ऐसी रिपोर्टें थीं कि पुलिस अधिकारियों ने यौन बलात्कार के मामले दर्ज करने से इनकार किया।

जेलों और हिरासत केंद्रों की परिस्थितियां

जेलों की परिस्थितियां अक्सर जीवन जोखिम वाली थीं, सबसे बढ़कर सफ़ाई की स्थिति तथा चिकित्सीय देखभाल पर्याप्त न होने और अत्यधिक भीड़- भाड़ के कारण। कारागार अंतरराष्ट्रीय मानकों पर खरे नहीं उतरे।

<u>भौतिक परिस्थितियां:</u> कारागारों में बहुधा बहुत ज़्यादा भीड़-भाड़ रहती थी और खाद्य, चिकित्सीय सेवाएं, सफ़ाई तथा पर्यावरणीय स्थितियां अक्सर अपर्याप्त रहती थीं। पीने योग्य पानी अक्सर उपलब्ध नहीं होता था। जेलों और हिरासत केंद्रों का निधीयन और कार्मिकों की संख्या आवश्यकता से कम बनी रही, और पर्याप्त ढांचागत सुविधाओं का अभाव रहा। कैदियों के साथ शारीरिक रूप से दुर्व्यवहार किया गया।

एनसीआरबी की *भारत के कारागार आंकड़ों की सन् 2015 की रिपोर्ट* के अनुसार, देश में 1,401 कारागार थे जिनकी अधिकृत क्षमता 366,781 व्यक्ति थी। क़ैद में रखे जा रहे लोगों की वास्तविक संख्या 419,623 थी। जेलों की आबादी का दो तिहाई से अधिक हिस्सा वे लोग थे जो मुक़दमों का इंतज़ार कर रहे थे। क़ानून की मांग यह है कि अवयस्क लोगों को पुनर्वासीय सुविधाओं में हिरासत में रखा जाए, हालांकि अधिकारियों ने कई बार उन्हें वयस्क जेलों में क़ैद रखा, ख़ासतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में। उत्तर प्रदेश में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त एक सलाहकार के अनुसार, अधिकांश जेलों में क़ैद लोगों की संख्या अनुमत क्षमता से दुगुनी और कई बार तीन गुना थी ।

नवंबर 2016 में राष्ट्रमंडल मानवाधिकार पहल ने जेलों में "भयप्रद परिस्थितियों" के बारे में दो रिपोर्टों का प्रवर्तन किया। उन रिपोर्टों के अनुसार, देश की जेलों की कुल आबादी का 67 प्रतिशत भाग वे लोग थे जो मुक़दमों का इंतज़ार कर रहे थे, और स्वतंत्र निरीक्षकों ने नियमित रूप से 1 प्रतिशत से भी कम जेलों का निरीक्षण किया।

एनसीआरबी की *भारत के कारागार आंकड़ों की सन् 2015 की रिपोर्ट* के अनुसार, भीड़-भाड़ की सबसे तीव्र समस्या दादरा नगर हवेली में थी जहां यह क्षमता का 277 प्रतिशत थी, जबकि छत्तीसगढ़ की जेलों में क्षमता का 234 प्रतिशत और दिल्ली की जेलों में क्षमता का 227 प्रतिशत थी। 8 अगस्त को गृह राज्यमंत्री हंसराज गंगाराम अहीर ने एनसीआरबी के आंकड़ों का हवाला देते हुए संसद के निचले सदन को सूचित किया कि वर्ष 2015 की समाप्ति पर देश की 1,401 जेलों में से 149 में भीड़-भाड़ की दर 200 प्रतिशत से अधिक थी।

मार्च में, गृह राज्यमंत्री अहीर ने संसद के निचले सदन को बताया कि सन् 2015 तक महिला क़ैदियों की 17,834 की जनसंख्या के लिए 4,391 महिला जेल कार्मिक थीं।

26 सितंबर को पुलिस ने मुंबई में एक दोष-सिद्ध महिला अपराधी मंजुला शेत्ये की मौत के लिए 6 जेल अधिकारियों के ख़िलाफ़ स्थानीय अदालत में आरोप दाखिल किए। 8 जुलाई को मुंबई पुलिस ने 6 जेल अधिकारियों को गिरफ़्तार किया जिन्होंने अपर्याप्त भोजन की उसकी शिकायत के बाद शेत्ये पर कथित रूप से प्रहार किया था। उसकी मौत के परिणाम में जेल के 200 क़ैदियों द्वारा हिंसक प्रतिवाद प्रदर्शन किया गया था, जिन पर बाद में दंगा करने का आरोप लगाया गया। 31 जुलाई को, मुंबई उच्च न्यायालय ने शेत्ये की मौत के कारण की जांच का आदेश दिया। उस सरकारी डॉक्टर को जिसने मृत्यु प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर किए थे निलंबित कर दिया गया।

<u>प्रशासन:</u> अधिकारियों ने मिलने आने वालों को बंदियों तक कुछ पहुंच की अनुमति दी, हालांकि कुछ परिवारजनों ने यह दावा किया कि अधिकारियों ने रिश्तेदारों को पहुंच प्रदान नहीं की, ख़ास तौर पर जम्मू और कश्मीर राज्य सहित संघर्षरत क्षेत्रों में।

4 अगस्त को, विवाद निपटाने की एक वैकल्पिक प्रक्रिया के माध्यम से, तमिलनाडु राज्य के क़ानूनी सेवा प्राधिकरण ने 570 मुक़दमा-पूर्व बंदियों को रिहा कर दिया (नौ केंद्रीय जेलों और तमिलनाडु में महिलाओं के लिए पाँच विशेष कारागृहों में) जिन्हें उनके कथित अपराधों के लिए निर्धारित न्यूनतम अवधि से अधिक समय तक हिरासत में रखा गया था।

<u>स्वतंत्र अनुवीक्षण:</u> पूरे वर्ष एनएचआरसी को बंदियों के मानवाधिकार उल्लंघनों की शिकायतें मिलती रहीं जिनकी वह तहक़ीकात करता रहा, लेकिन सभ्य समाज प्रतिनिधियों का मानना था कि जेल प्रहरियों अथवा

अधिकारियों द्वारा बदले की कार्रवाई के डर से कुछ ही क़ैदियों ने शिकायतें दर्ज कीं। 26 मई को, एनएचआरसी ने भोपाल की एक जेल में क़ैद उन 21 बंदियों के यातना के आरोपों की तहक़ीकात का आदेश दिया जिन पर मुक़दमा चल रहा था।

अधिकारियों ने बंदियों को राज्य तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में शिकायत दर्ज करने की अनुमति दी, लेकिन इन आयोगों को बस यह सिफ़ारिश करने का ही अधिकार है कि अधिकारीगण इन शिकायतों को दूर करें। ख़बर है कि सरकारी अधिकारी सर्वोच्च न्यायालय के उस आदेश का पालन करने में अक्सर नाकाम रहे जिसमें केंद्रीय सरकार तथा स्थानीय अधिकारियों को हिरासत में हिंसा पर निगाह रखने के लिए पुलिस स्टेशनों की नियमित जांच करने की हिदायत दी गई है।

बहुत से राज्यों में एनएचआरसी ने पहले से बताए बिना राज्य बंदीगृहों की यात्राएं कीं, लेकिन सैनिक हिरासत केंद्र एनएचआरसी के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते। एनएचआरसी के एक विशेष प्रतिवेदक ने यह सत्यापित करने के लिए राज्य बंदीगृहों का दौरा किया कि अधिकारीगण सभी बंदियों को चिकित्सीय सुविधा उपलब्ध करा रहे हैं। प्रतिवेदक ने पूरे साल नियमित आधार पर बंदीगृहों का दौरा किया लेकिन उसने सार्वजनिक रूप से या प्रेस के लिए कोई रिपोर्ट जारी नहीं की।

डी. मनमाने ढंग से गिरफ्तारी या हिरासत

क़ानून मनमाने ढंग से गिरफ़्तारी या हिरासत की मनाही करता है, लेकिन वर्ष के दौरान दोनों ही बातें हुईं। पुलिस ने गिरफ़्तारियों का न्यायिक पुनरावलोकन स्थगित करने के लिए विशेष सुरक्षा क़ानूनों का भी इस्तेमाल किया। मुक़दमे से पहले की हिरासत मनमानी और लंबी रही, कई बार तो दोषी पाए गए लोगों को सुनाई गई सज़ा की अवधि से भी लंबी।

मानवाधिकार एनजीओ के कथनानुसार, कुछ पुलिसवालों ने जबरन या झूठी स्वीकारोक्ति हासिल करने के लिए यातना, दुर्व्यवहार, और मनमानी हिरासत का इस्तेमाल किया। कुछ मामलों में ख़बर है कि पुलिस ने संदिग्धों को उनकी गिरफ़्तारी को पंजीकृत किए बिना ही हिरासत में रखा तथा बंदियों को पर्याप्त भोजन और पानी से वंचित रखा।

पुलिस और सुरक्षा तंत्र की भूमिका

क़ानून और व्यवस्था बनाए रखने की मूल ज़िम्मेदारी 29 राज्यों और सात संघ प्रशासित क्षेत्रों की है, और केंद्रीय सरकार नीति संबंधी निरीक्षण प्रदान करती है। पुलिस राज्य के अधिकार क्षेत्र में आती है। गृह मंत्रालय अधिकांश अर्धसैनिक बलों, आंतरिक ख़ुफ़िया विभागों, और राष्ट्रीय क़ानून प्रवर्तन एजेंसियों पर नियंत्रण रखता है, और राज्य पुलिस बलों के वरिष्ठ अधिकारियों को प्रशिक्षण प्रदान करता है। ह्यूमन राइट्स वॉच

(एचआरडब्ल्यू) के अनुसार, मनमानी गिरफ़्तारी, यातना, और सुरक्षाबलों द्वारा जबरन स्वीकारोक्तियों के मामले आम रहे। पुलिस पर काम का अधिक बोझ, पर्याप्त से कम वेतन, और राजनीतिक दबाव डाला जाना जारी रहा, जिसने कुछ मामलों में भ्रष्टाचार में योगदान किया। एचआरडब्ल्यू की सन् 2017 की भारत संबंधी देश रिपोर्ट में पाया गया कि अधिकारियों पर उनके द्वारा किए गए अपराधों के लिए विरले ही मुक़दमा चलाया गया क्योंकि क़ानून सार्वजनिक अधिकारियों पर मुक़दमा चलाना "अगर असंभव नहीं तो कठिन" अवश्य बनाता है।

देशभर में क़ानून प्रवर्तन और सुरक्षा बलों की प्रभावकारिता में व्यापक अंतर मौजूद रहा। क़ानून के अनुसार, अदालतें किसी पुलिस अधिकारी के विरुद्ध तब तक मुक़दमे की सुनवाई नहीं कर सकतीं जब तक कि केंद्रीय अथवा राज्य सरकार पहले मुक़दमा चलाने की इजाज़त न दे दे। फिर भी, एनजीओ ने रिपोर्ट दी कि बहुत से मामलों में पुलिस ने पीड़ित की ऐसी शिकायतें दर्ज करने, जिसे “प्रथम सूचना रिपोर्ट” (एफ़आईआर) कहा जाता है, से इंकार कर दिया जो अधिकारियों के ख़िलाफ़ कथित अपराधों के बारे में थीं, और इस तरह पीड़ितों के लिए न्याय प्राप्ति के प्रयास का रास्ता बंद कर दिया। इसके अतिरिक्त, एनजीओ ने बताया कि कई बार पीड़ित, बदले की कार्यवाही के डर से, पुलिस द्वारा किए गए अपराधों की रिपोर्ट करने से हिचकिचाते हैं। ऐसे मामले सामने आए जहां हर स्तर के अधिकारियों ने दंड-मुक्ति के भाव से काम किया, लेकिन ऐसे मामले भी थे जहां सुरक्षा अधिकारियों को ग़ैरक़ानूनी कामों के लिए उत्तरदायी ठहराया गया। सैन्य अदालतों ने सशस्त्र सेना और अर्धसैनिक बलों द्वारा दुर्व्यवहार के मामलों की जांच-पड़ताल की। अधिकारियों ने क़ानून प्रवर्तन अफ़सरों के विरुद्ध सार्वजनिक अदालतों में मुक़दमे चलाए लेकिन कभी-कभी यथोचित प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया। अधिकारियों ने कभी-कभी अफ़सरों को अपराध का दोषी ठहराने के बाद स्थानांतरित कर दिया।

एनएचआरसी ने सिफ़ारिश की कि गिरफ़्तारी, भागने के प्रयास, या पुलिस द्वारा पीछा किए जाने के दौरान होने वाली सभी मौतों की राज्य पुलिस के अपराधिक तहक़ीकात विभाग द्वारा छानबीन की जाए। लेकिन बहुत से राज्यों ने इस अबाध्यकारी सिफ़ारिश का पालन नहीं किया और वरिष्ठ अधिकारियों के स्वनिर्णय के आधार पर आंतरिक पुनरावलोकन करना जारी रखा।

हालांकि एनएचआरसी के दिशा निर्देशों में राज्य सरकारों से यह मांग की गई है कि वे पुलिस कार्यवाही के कारण हुई सभी मौतों के मामलों की 48 घंटे के भीतर एनएचआरसी को रिपोर्ट दें, लेकिन राज्य सरकारों ने इन दिशा निर्देशों का निरंतर पालन नहीं किया। एनएचआरसी ने राज्य सरकारों से यह भी मांग की कि पीड़ितों के परिवारों को आर्थिक मुआवज़ा दिया जाए, लेकिन राज्य सरकारों ने इस व्यवस्था का निरंतर पालन नहीं किया। अधिकारियों ने सशस्त्र बलों के लिए यह आवश्यक नहीं बनाया कि वे हिरासत में हुई मौतों की एनएचआरसी को जानकारी दें।

27 जुलाई को, सशस्त्र बल ट्रिब्यूनल ने जम्मू-कश्मीर राज्य में सन् 2010 में 3 नागरिकों की मौत में उलझाव रखने वाले पांच सैन्यकर्मिकों की आजीवन कारावास की सज़ाएं निलंबित कर दीं। रिपोर्टों के अनुसार वे नागरिक एक दिखावटी मुठभेड़ में मारे गए थे और बाद में उन पर विदेशी युद्धकारी होने का आरोप लगाया गया था।

गिरफ़्तारी कार्यविधियां तथा बंदियों के साथ व्यवहार

पुलिस किसी व्यक्ति को बिना आरोप लगाए 30 दिन तक हिरासत में रख सकती है, हालांकि गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ़्तारी के 24 घंटे के भीतर जज के सम्मुख पेश किया जाना अनिवार्य है। क़ानूनी रक्षोपायों के अभाव और भारी बोझ तले दबे तथा कम संसाधन प्राप्त न्यायालय तंत्र के कारण लंबे समय तक और मनमाने ढंग से की गई हिरासतें एक उल्लेखनीय समस्या बनी रहीं।

जब तक अधिकारियों ने किसी संदिग्ध को निवारक नज़रबंदी क़ानून के तहत न रोक रखा हो, बंदी पर दोषारोपण 24 घंटे के भीतर हो जाना चाहिए। राज्य अधिकारी निवारक नज़रबंदी क़ानूनों की गुहार लगाते रहे, सबसे अधिक बारंबार दिल्ली में, लेकिन गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, पंजाब, और जम्मू-कश्मीर राज्यों में भी।

अधिकारियों को अपराधिक आरोपों में पकड़े गए व्यक्ति को उसके ख़िलाफ़ आरोपों की तथा क़ानूनी सलाह लेने के उसके अधिकार की अविलंब जानकारी देनी चाहिए। क़ानून के अनुसार एक मैजिस्ट्रेट किसी आरोपित व्यक्ति को अभियोग दर्ज कराए जाने से पूर्व हिरासत में रखने का अधिकार दे सकता है लेकिन यह अवधि 90 दिन से ज्यादा नहीं हो सकती। मानक आपराधिक प्रक्रिया के अंतर्गत, यदि अभियोग दर्ज नहीं किए गए तो अधिकारियों को 90 दिन के बाद आरोपी को जमानत पर रिहा करना होगा। कानून पुलिस को पूछताछ के लिए लोगों को बुलाने की अनुमति भी देता है, लेकिन वह पुलिस को गिरफ़्तारी से पहले तहक़ीक़ाती हिरासत का अधिकार नहीं देता। ऐसी घटनाएं सामने आईं जिनमें अधिकारियों ने क़ानूनी सीमाओं से परे संदिग्धों को कथित रूप से हिरासत में रखा।

क़ानून हिरासत में लिए गए व्यक्तियों को बिना अभियोग लगाए 180 दिन तक (पुलिस हिरासत में 30 दिन सहित) न्यायिक हिरासत में रखने की भी अधिकारियों को इजाज़त देता है। अवैध गतिविधि निवारण कानून (यूएपीए) में, जो अधिकारियों को विद्रोह अथवा आतंकवाद से संबद्ध मामलों में अभियोग लगाए बिना लोगों को हिरासत में लेने की क्षमता प्रदान करता है, विदेशी राष्ट्रिकों के लिए ज़मानत का कोई प्रावधान नहीं है और वह अदालतों को बंदी बनाए गए नागरिकों के मामले में ज़मानत से इनकार करने का अधिकार देता है। यह उस सूरत में आरोपित व्यक्ति को दोषी मान लेता है जबकि अभियोग पक्ष उसके पास हथियार या विस्फोटक होने या अपराध स्थल पर उंगलियों के निशान होने का साक्ष्य पेश कर सके, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि अधिकारी

अपराधिक इरादा होना प्रदर्शित करते हैं या नहीं। यह भी रिपोर्ट है कि राज्य सरकारों ने यूएपीए के तहत औपचारिक अभियोग दर्ज करने से पहले लोगों को लंबी अवधि तक ज़मानत दिए बिना हिरासत में रखा।

क़ानून कुछ ख़ास मामलों में निवारक नज़रबंदी की इजाज़त देता है। राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून, जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़, देश में कहीं भी पुलिस को ऐसे लोगों को बिना अभियोग लगाए या मुक़दमा चलाए 1 वर्ष तक हिरासत में रखने की अनुमति देता है जिन्हें सुरक्षा के लिए ख़तरा समझा जाए। क़ानून परिवार के सदस्यों और वकीलों को राष्ट्रीय सुरक्षा बंदियों से मिलने की इजाज़त देता है और अधिकारियों को आदेश देता है कि वे 5 दिन के भीतर, अथवा असाधारण परिस्थितियों में 10 से 15 दिन के भीतर, बंदी को रोक कर रखने जाने का आधार बताएं।

सार्वजनिक सुरक्षा क़ानून, जो केवल जम्मू और कश्मीर राज्य में ही लागू है, राज्य अधिकारियों को अभियोग लगाए बिना अथवा न्यायिक पुनरीक्षण के बिना लोगों को परिवार वालों से मिले बिना 2 वर्ष तक हिरासत में रखने की अनुमति देता है। अधिकारियों ने पूछताछ के दौरान बंदियों को वकील तक पहुंच की इजाज़त दी, लेकिन जम्मू-कश्मीर राज्य में कथित रूप से पुलिस ने नित्य ही मनमाने ढंग से हिरासत में लेने का काम किया तथा बंदियों को वकीलों और चिकित्सा सेवा तक पहुंच हासिल नहीं होने दी।

आरोपित व्यक्तियों को गिरफ़्तारी के बाद अपनी पहली सुनवाई सहित नि:शुल्क क़ानूनी सहायता प्राप्त करने का अधिकार है। संविधान स्पष्ट करता है कि यह तय करने के लिए कि किसी भी नागरिक को आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रहना पड़े, राज्य को क़ानूनी सहायता प्रस्तुत करनी चाहिए, लेकिन अधिकारियों ने इस आवश्यकता का नियमित रूप से मूल्यांकन नहीं किया।

ऐसे मामलों की रिपोर्ट सामने आईं जिनमें पुलिस ने संदिग्धों के अपने क़ानूनी सलाहकार से मिलने के अधिकार को नकारा और साथ ही ऐसे मामले सामने आए जिनमें पुलिस ने ग़ैरक़ानूनी तरीके से संदिग्धों की बातचीत का अनुश्रवण किया और गोपनीयता के अधिकारों का उल्लंघन किया। यह क़ानून है कि अधिकारियों को बंदियों के परिवार के सदस्यों को उन तक पहुंच की अनुमति देनी ही चाहिए, लेकिन इसका सदैव ही पालन नहीं किया गया।

<u>मनमानी गिरफ़्तारी:</u> क़ानून मनमानी गिरफ़्तारी अथवा हिरासत की मनाही करता है, लेकिन कुछ मामलों में रिपोर्ट है कि पुलिस ने नागरिकों को मनमाने ढंग से गिरफ़्तार करना जारी रखा। ऐसी रिपोर्टें थीं कि पुलिस ने अपनी शिनाख़्त बताए बिना अथवा गिरफ़्तारी वारंट पेश किए बिना लोगों को हिरासती पूछताछ के लिए बंदी बनाया।

<u>मुक़दमा-पूर्व हिरासत:</u> केरल में, कोच्चि स्थित संवैधानिक अधिकार, अनुसंधान एवं समर्थन केंद्र (सीसीआरआरए) ने रिपोर्ट दी कि केरल की केंद्रीय जेल में मानसिक असमर्थता वाले कुछ ऐसे क़ैदी थे जिन्हें

"मुक़दमे के लिए योग्य नहीं" माना गया, लेकिन वह 10 से 26 वर्ष तक मुक़दमों का इंतज़ार करते रहे। इस एनजीओ के अनुसार, कुछ मामलों में क़ैदियों को उनकी संभाव्य सज़ाओं से कहीं अधिक लंबी अवधियों तक हिरासत में रखा गया। सन् 2013 में सीसीआरआरए के संस्थापक ने उन बंदियों को रिहा किए जाने के लिए केरल उच्च अदालत में याचिका दाखिल की। इसके जवाब में अदालत ने राज्य सरकार के लिए यह आदेश जारी किया कि वह अभियुक्तों को पर्याप्त चिकित्सीय इलाज उपलब्ध कराएं ताकि वह मुक़दमों के योग्य हो जाएं। वर्ष के अंत तक यह मामला केरल उच्च अदालत में लंबित था।

सरकार ने ऐसी "तीव्र पथ" अदालतों का इस्तेमाल करके लंबी हिरासतों को घटाने और जेलों में भीड़-भाड़ को कम करने के प्रयास जारी रखे, जिन्होंने मुक़दमों की समय सीमा तय की, मामलों के प्रबंधन के लिए दिशानिर्देश उपलब्ध कराए, तथा ज़मानत के उपयोग को बढ़ावा दिया। कुछ एनजीओ ने यथोचित प्रक्रिया का सम्मान करने में असफल रहने तथा जो बंदी ज़मानत देने में समर्थ नहीं हैं उन्हें हिरासत में ही रहने पर मजबूर करने के लिए इन अदालतों की आलोचना की।

सन् 2015 के एनसीआरबी आंकड़े दर्शाते हैं कि मुक़दमे का इंतज़ार कर रहे अधिकांश व्यक्तियों ने ज़मानत हासिल कर पाने से पहले 3 महीने से अधिक का समय जेल में बिताया, और लगभग 65 प्रतिशत ने ज़मानत पर रिहा होने से पहले 3 महीने से 5 वर्ष तक का समय जेल में बिताया। एनसीआरबी की 2016 की रिपोर्ट में नए आंकड़े शामिल नहीं थे।

ई. न्यायोचित सार्वजनिक मुक़द्दमे से वंचन

क़ानून में एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था है, किंतु न्यायिक-भ्रष्टाचार व्यापक रूप से फैला हुआ था। उदाहरण के लिए, मई में, समाचार पत्र "हिंदू" ने उन पांच न्यायाधीशों के मामले की रिपोर्ट दी जो भ्रष्टाचार के आरोपों सहित, अनेक अपराधों के लिए महाभियोग प्रक्रिया का सामना कर रहे थे।

न्यायिक प्रणाली अत्यधिक बोझ तले गंभीर रूप से दबी रही तथा मुक़दमों के प्रबंध की आधुनिक प्रणालियों का अभाव रहा, जिससे या तो न्याय नहीं मिला या उसमें विलंब हुआ। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए 2015-16 के आंकड़ों के अनुसार, देश के 24 उच्च न्यायालयों में जजों के 43 प्रतिशत स्थान खाली थे।

आरटीआई के एक सक्रियवादी अमित जेठवा की 2010 में हुई हत्या के संबंध में नई घटनाएं सामने आईं। जून में गुजरात उच्च न्यायालय ने इस नतीजे पर पहुंचने के बाद मुक़दमा फिर से चलाए जाने का आदेश दिया कि दीनू सोलंकी ने, जो उस समय संसद सदस्य था जब उस पर जेठवा की हत्या का आदेश देने का आरोप है, तब गवाहों के साथ सांठगांठ की थी जब 195 में से 105 गवाह मुक़दमे के दौरान प्रतिकूल हो गए थे। 30 अक्टूबर को सर्वोच्च न्यायालय ने सोलंकी की ज़मानत रद्द कर दी और उसे पुलिस के आगे आत्मसमर्पण का आदेश दिया।

अदालत ने यह भी आदेश दिया कि मुक़दमा दिन-प्रतिदिन के आधार पर चलाया जाए और सोलंकी को आदेश दिया जब तक मुक़दमे के लिए जरूरी न हो वह गुजरात में न रहे।

मुक़दमा प्रक्रियाएं

क़ानून में यह व्यवस्था है कि राज्य-सुरक्षा अथवा सरकारी गोपनीय बातों के उलझाव वाले मुक़दमों को छोड़, सभी मुक़दमे सार्वजनिक रूप से चलाए जाएं। यूएपीए परिस्थितियों के तहत वर्णित को छोड़, प्रतिवादियों को निर्दोष मान कर चलने का सुख प्राप्त है, और वे अपना परामर्शदाता चुन सकते हैं। राज्य उन प्रतिवादियों को मुफ्त क़ानूनी सलाहकार उपलब्ध कराता है जो स्वयं उसका खर्च नहीं उठा सकते, लेकिन परिस्थितियों ने अक्सर योग्य परामर्शदाता तक पहुंच सीमित कर दी, और भारी बोझ तले दबी न्याय प्रणाली के परिणाम स्वरूप अदालतों में चल रहे मुक़दमों में लंबी देरी हुई, और कभी-कभी मामला निपटाने में एक दशक से अधिक का समय लगा।

हालांकि प्रतिवादियों को दोष लगाने वालों का सामना करने और स्वयं अपने साक्ष्य और गवाह पेश करने का अधिकार है, लेकिन समुचित क़ानूनी प्रतिनिधित्व के अभाव के कारण कई बार प्रतिवादी अपने इस अधिकार का इस्तेमाल नहीं कर सके। प्रतिवादियों को साक्ष्य न देने अथवा अपराध स्वीकार न करने का अधिकार है। अदालतों के लिए अनिवार्य है कि वे सज़ाओं का सार्वजनिक रूप से ऐलान करें, तथा न्याय प्रणाली के अधिकांश स्तरों पर अपील करने के कारगर मार्ग मौजूद हैं।

राजनीतिक क़ैदी और नज़रबंद

राजनीतिक क़ैदियों और नज़रबंद किए गए लोगों की रिपोर्टें थीं। एनजीओ ने रिपोर्ट दी कि जम्मू और कश्मीर राज्य में राजनीतिक क़ैदी थे और सार्वजनिक सुरक्षा क़ानून (पीएसए) के तहत लोगों को अस्थायी रूप से रोक कर रखा गया। जम्मू और कश्मीर राज्य द्वारा जून के अंत तक पीएसए के तहत 650 से अधिक ऐसे मामले दर्ज किए गए और जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय को सौंपे गए।

नागरिक न्यायिक कार्य-प्रणालियां एवं उपाय

व्यक्ति, अथवा व्यक्तियों या दलों की ओर से एनजीओ, सार्वजनिक क्षति की न्यायिक क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए किसी उच्च न्यायालय या सीधे सर्वोच्च न्यायालय में सार्वजनिक-हित मुक़दमा (पीआईएल) याचिका दाखिल कर सकते हैं। शिकायतों में किसी सरकारी एजेंट द्वारा सार्वजनिक कर्तव्य का अतिक्रमण या किसी संवैधानिक व्यवस्था का उल्लंघन शामिल हो सकता है। एनजीओ ने भ्रष्टाचार और पक्षपात के आरोपों से सम्बद्ध मामलों में सरकारी अधिकारियों को सभ्य समाज संगठनों के प्रति उत्तरदायी बनाने का श्रेय पीआईएल याचिकाओं को दिया।

जनवरी 2016 में मुंबई उच्च अदालत ने सन् 2014 से 2015 तक हिरासत में मौत और पुलिस यातना के मामलों में दोगुनी वृद्धि पर ध्यान दिया और महाराष्ट्र सरकार को अदालत में रिपोर्ट पेश करने की हिदायत दी। अदालत ने इस पर भी सरकार की आलोचना की कि वह पुलिस स्टेशनों में सीमित-परिधि टेलीविज़न कैमरे लगाने में नाकाम रही। सभी पुलिस स्टेशनों में ऐसे कैमरे लगाने के अदालत के आदेश के अनुपालन के पहले चरण के लिए मुंबई में 91 में से 25 पुलिस थानों में सीमित-परिधि टेलीविज़न कैमरे लगाने के लिए जनवरी में महाराष्ट्र सरकार ने 275 लाख रुपये (440,000 डॉलर) निर्धारित किए।

एफ. गोपनीयता, परिवार, घर, या पत्राचार में मनमाना या ग़ैरकक़ानूनी हस्तक्षेप

हालांकि संविधान में गोपनीयता का कोई सुव्यक्त अधिकार शामिल नहीं है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की अन्य धाराओं में ऐसा अधिकार निहित पाया है। अगस्त में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार द्वारा व्यक्ति की जीवन-संबंधी सूचना एकत्र किए जाने के एक मामले में यह फ़ैसला सुनाया कि गोपनीयता एक "मूलभूत अधिकार" है। यह क़ानून, कुछ अपवादों के साथ, मनमाने हस्तक्षेप की मनाही करता है। सरकार ने आम तौर पर इस व्यवस्था का सम्मान किया, हालांकि कई बार अधिकारियों ने नागरिकों के गोपनीयता-अधिकारों का अतिक्रमण किया। क़ानून की यह मांग है कि पुलिस पकड़ने या तलाशी लेने के लिए वारंट प्राप्त करे, केवल उन मामलों को छोड़ जहां ऐसा करने से नावाजिब देरी होगी। पुलिस के लिए यह ज़रूरी है कि वह वारंट-रहित तलाशियों का अपराध के अधिकार-क्षेत्र के सबसे नज़दीकी मजिस्ट्रेट के सम्मुख लिखित रूप में औचित्य सिद्ध करे।

इस क़ानून ने इलेक्ट्रॉनिक निगरानी के मामले में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व में बाधा डाली। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, जिसमें सन् 2016 के एनसीआरबी के अस्थायी आंकड़ों का हवाला दिया गया है, गृह राज्यमंत्री अहीर ने सन् 2015 में 9 मामलों की तुलना में सन् 2016 में इस क़ानून के उल्लंघन में दर्ज किए गए 30 मामलों का हवाला दिया।

केंद्र और राज्य सरकारों, दोनों ने क़ानूनी अधिकार के तहत संचार अवरोधन किया। भारत सरकार के योजना आयोग द्वारा सन् 2012 में आयोजित गोपनीयता पर विशेषज्ञ दल की बैठक में, जो इस बारे में उपलब्ध सबसे ताज़ा पुनरावलोकन है, ध्यान दिलाया गया कि क़ानून की इन दो धाराओं के बीच के अंतरों ने एक अस्पष्ट नियमन प्रणाली निर्मित कर दी है जो, रिपोर्ट के अनुसार, "असंगत, अपारदर्शी, और दुरुपयोग के लिए प्रवण है, तथा उन लोगों को कोई इलाज या मुआवज़ा उपलब्ध नहीं कराती जिन्हें हानि पहुंची हो"।

यूएपीए वारंट-बिना तलाशियों के लिए एक अतिरिक्त क़ानूनी आधार उपलब्ध कराता है। यूएपीए आतंकवादी मामलों में, बीच में रोके गए संचारों से प्राप्त साक्ष्य के इस्तेमाल की भी अनुमति देता है। जम्मू और कश्मीर,

पंजाब, तथा मणिपुर राज्यों में सुरक्षा अधिकारियों को वारंट के बिना तलाशी लेने और गिरफ्तार करने के विशेष अधिकार प्राप्त हैं।

सन् 2005 का छत्तीसगढ़ का विशेष सार्वजनिक सुरक्षा क़ानून (सीएसपीएसए) पुलिस को किसी व्यक्ति को बिना अभियोग लगाए 90 दिन तक हिरासत में रखने की इजाज़त देता है। प्रतिपक्षियों की दलील है कि यह क़ानून, जो ऐसे व्यक्तियों को जो " क़ानून के प्रशासन में बाधा डालने की प्रवृत्ति रखने रखते हों" हिरासत में रखने का अधिकार देता है, गोपनीयता तथा वाक्-स्वतंत्रता का उल्लंघन करता है। सरकार ने सीएसपीएसए के तहत दो पत्रकारों को, नक्सलवादी विद्रोहियों द्वारा पुलिस पर किए गए एक घातक हमले में सहअपराधिता का आरोप लगाते हुए, हिरासत में लिया; कुछ मीडिया रिपोर्टों में संकेत दिया गया कि अधिकारियों ने उन पत्रकारों को उनकी रिपोर्टिंग के कारण क़ैद किया। एक स्थानीय अदालत में उन दो में से एक पत्रकार को जुलाई 2016 में बरी कर दिया। 27 फरवरी को, सर्वोच्च न्यायालय ने छत्तीसगढ़ के बस्तर ज़िले के स्वच्छंद पत्रकार संतोष यादव को ज़मानत दे दी जिससे माओवादी विद्रोहियों के साथ कथित सहलग्नता के कारण सीएसपीएसए तथा गैरक़ानूनी गतिविधि निरोधक क़ानून (यूएपीए) के तहत जेल में रखा गया था।

जी. आंतरिक संघर्ष में दुर्व्यवहार

देश की सशस्त्र सेनाएं, अलग-अलग राज्यों के सुरक्षा बल, तथा अर्धसैनिक बल कई उत्तर पूर्वी राज्यों में विद्रोही ग्रुपों के साथ, तथा देश के उत्तर, मध्यवर्ती और पूर्वी भागों में माओवादी विद्रोहियों के साथ एक सशस्त्र संघर्ष में उलझे रहे -- हालांकि इन संघर्षों की तीव्रता में उल्लेखनीय कमी आना जारी रहा। सेना और केंद्रीय सुरक्षा बलों की उत्तर-पूर्व के संघर्ष वाले क्षेत्रों में तैनाती जारी रही।

इन संघर्षों में शामिल सभी पक्षों द्वारा ताक़त के इस्तेमाल के परिणाम-स्वरुप संघर्ष में भागीदार तथा नागरिक दोनों हताहत हुए। ऐसी रिपोर्टें थीं कि सरकारी सुरक्षा बलों ने न्यायेतर हत्याएं कीं, जिनमें पकड़े गए युद्धकारियों की मौतों को छिपाने के लिए मुठभेड़ मौतों का दिखावा किया जाना शामिल है। मानवाधिकार दलों ने दावा किया कि कथित "मुठभेड़ों" के मामलों में पुलिस ने शव देने से इनकार किया। अधिकारियों ने सशस्त्र बलों को हिरासत में हुई मौतों की रिपोर्ट एनएचआरसी को देने के लिए बाध्य नहीं किया।

जुलाई में एसएचआरसी ने जम्मू कश्मीर राज्य को उस कपड़ा कार्मिक को मुआवज़े के तौर पर दस लाख रुपए (16,000 डॉलर) देने का आदेश दिया जिसे मई में मध्यवर्ती कश्मीर में सेना के एक मेजर ने अपनी सैनिक जीप के अगले बंपर पर बांधा था और प्रदर्शनकारियों के विरुद्ध मानवीय ढाल के रूप में इस्तेमाल किया था। मीडिया ने रिपोर्ट दी कि मेजर नितिन गोगोई ने 9 अप्रैल को एक संसदीय उपचुनाव के दौरान क्रुद्ध भीड़ को सैन्य कार्मिकों पर हमला करने से रोकने के लिए पीड़ित का इस्तेमाल किया। मानवाधिकार सक्रियवादियों ने गोगोई का समर्थन करने वाले सेना प्रमुख बिपिन रावत के बयान की भी आलोचना की। गोगोई को उसकी

कार्रवाई के लिए सेना प्रमुख के सराहना कार्ड से पुरस्कृत भी किया गया और उसे व्यक्तिगत रूप से सज़ा नहीं दी गई।

केंद्रीय और राज्य सरकारों एवं सशस्त्र बलों ने सरकारी बलों द्वारा किए गए कुछ उल्लंघनों की शिकायतों की तहक़ीकात की और सज़ाएं दीं। अधिकारियों ने आतंकवाद संबंधी विधान के तहत विद्रोहियों को गिरफ़्तार किया और उन पर मुक़दमे चलाए।

आंतरिक संघर्षों से उत्पन्न मानवाधिकार उल्लंघनों के बारे में कुछ ही तहक़ीकातें हुईं और मुक़दमे चले। एनजीओ का दावा था कि एएफएसपीए के निरापदता प्रावधानों के कारण, अधिकारियों ने पिछले वर्षों के दौरान जम्मू और कश्मीर राज्य में मारे गए नागरिकों की मौतों के लिए सशस्त्र बलों को उत्तरदायी नहीं ठहराया।

<u>हत्याएं</u>: विभिन्न घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों ने जम्मू और कश्मीर राज्य में भीड़-नियंत्रण के उद्देश्य से सुरक्षा बलों द्वारा छर्रा बंदूकों के इस्तेमाल पर गंभीर चिंता व्यक्त किया जाना जारी रखा। 31 जुलाई तक कश्मीर घाटी के 12 ज़िलों में छर्रा बंदूकों के कथित इस्तेमाल की 143 घटनाओं में एक नागरिक मारा गया और 36 घायल हुए। इसकी तुलना में सन् 2016 में जम्मू कश्मीर राज्य भर में छर्रा बंदूक के इस्तेमाल की 777 घटनाओं में, जिनमें से अधिकांश जुलाई 2016 में हिजबुल मुजाहिद्दीन के आतंक कारी बुरहान वानी की हत्या के बाद हिंसक प्रतिवाद- प्रदर्शनों के दौरान घटीं, 15 नागरिकों की मौत हुई और 396 घायल हुए। इस वर्ष के दौरान एक रिपोर्ट में एमनैस्टी इंटरनेशनल ने देश में ऐसे 88 व्यक्तियों के मामलों का ब्यौरा दिया जो 2014 से 2017 तक के वर्षों के दौरान जम्मू कश्मीर राज्य की पुलिस तथा केंद्रीय रिज़र्व पुलिस बल द्वारा दाग़े गए धातु के छर्रों के कारण नेत्र-दृष्टि की क्षति का शिकार हुए। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया सूत्रों, दोनों ने तथा एनजीओ ने भी छर्रा बंदूकों से घायल होने वाले लोगों को, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार से होने वाली, हानि की रिपोर्ट दी है।

माओवादी प्रभावित क्षेत्रों में सुरक्षा बलों तथा विद्रोहियों द्वारा दुर्व्यवहार की रिपोर्टें थीं। 29 मार्च को असम के चिरंग जिले में जनजातियों से जुड़े दो नागरिक, सुरक्षा बलों से एक मुठभेड़ के बाद मर गए। विश्वास किया जाता है कि दोनों लोग बोडोलैंड के राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चा नामक निषिद्ध सशस्त्र विद्रोही बल के सदस्य थे। असम पुलिस द्वारा दर्ज एक रिपोर्ट में, सुरक्षाबलों ने कहा कि उन्हें इस दल से भारी गोलीबारी का सामना करना पड़ा और कि सुरक्षा बलों की जवाबी गोलीबारी में ये दो लोग मारे गए। लेकिन केंद्रीय रिज़र्व पुलिस बल (सीआरपीएफ) के महा-निरीक्षक द्वारा की गई जांच-पड़ताल में कहा गया कि वह दो लोग, जो पहले ही पुलिस की हिरासत में थे, पास गांव में ले जाए गए, और गोली मारकर उनकी हत्या कर दी गई। रिपोर्ट में यह भी पाया गया कि सुरक्षाबलों ने अभिशंसी साक्ष्य के रूप में हथियार और गोला-बारूद वहां रख दिया, जिसमें चीनी चिन्हांकित एक हथगोला शामिल था। सीआरपीएफ ने महानिदेशक की रिपोर्ट को सार्वजनिक करने से इनकार कर दिया, हालांकि उसका चोरी किया गया, एक ऑनलाइन प्रारूप उपलब्ध था।

12 मार्च को माओवादी विद्रोहियों ने छत्तीसगढ़ में सुकमा के भेजी गांव के निकट 13 अर्धसैनिक कार्मिकों को मार डाला। 25 अप्रैल को, माओवादी विद्रोहियों ने, छत्तीसगढ़ में ही, 25 अर्धसैनिक कार्मिकों को मार डाला तथा अन्य 6 को घायल कर दिया। हमले के समय ये सैनिक सड़क निर्माण के लिए सुरक्षा प्रदान कर रहे थे।

अपहरण: मानव अधिकार ग्रुपों का कहना था कि सैनिक और अर्धसैनिक बलों, तथा विद्रोहियों ने मणिपुर, झारखंड, और माओवाद प्रभावित क्षेत्रों में बहुत से लोगों का अपहरण किया। मानवाधिकार सक्रियवादियों ने हिरासत के दौरान क़ैदियों को यातनाएं दिए जाने अथवा मार दिए जाने के मामलों का भी आरोप लगाया। वर्ष के दौरान संचार माध्यमों ने मणिपुर में विद्रोहियों द्वारा अपहरण के मामलों की रिपोर्ट दी। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, मई में युद्धकारियों ने मणिपुर में कूकी कबीले के 3 सदस्यों का अपहरण कर लिया और उनमें से दो को मार डाला। इस वारदात की किसी ने जिम्मेदारी का दावा नहीं किया। मणिपुर के संयुक्त एनजीओ मिशन ने असम राइफल, मणिपुर पुलिस, और सेना सहित, सुरक्षा बलों द्वारा जून तक न्यायेतर हत्याओं, बलात्कार, और गायब हो जाने के 291 मामलों की रिपोर्ट दी।

शारीरिक दुर्व्यवहार, सज़ा, और यातना: ऐसी रिपोर्टें थीं कि सरकारी सुरक्षाबलों ने हिरासत में विद्रोहियों एवं कथित आतंकवादियों को यातनाएं दी, बलात्कार किया, और दुर्व्यवहार किया तथा प्रदर्शनकारियों को चोटें पहुंचाईं।

बाल सैनिक: खबर है कि विद्रोही ग्रुपों ने सरकारी अस्तित्वों पर हमलों के लिए बच्चों का इस्तेमाल किया। गृह मंत्रालय ने रिपोर्ट दी कि बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, और ओडिशा राज्यों में माओवादी ग्रुपों ने 6 से 12 साल की उम्र के लड़के और लड़कियों को बच्चों की विशिष्ट टुकड़ियों (बाल दस्ता और बाल संगम) में जबरन भर्ती किया। माओवादी ग्रुपों ने लड़ाई और ख़ुफ़िया जानकारी एकत्र करने की भूमिकाओं में बच्चों का इस्तेमाल किया। विद्रोहियों ने बच्चों को गुप्तचरों और संदेशवाहकों के रूप में प्रशिक्षण दिया और साथ ही हथियार चलाने, विस्फोटक लगाने, और ख़ुफ़िया जानकारी एकत्र करने का प्रशिक्षण दिया।

हालांकि संयुक्त राष्ट्र संघ बाल सैनिकों के सभी आरोपों की पुष्टि नहीं कर सका, लेकिन संसद में पेश की गई रिपोर्टों में ऐसे ही आरोप शामिल थे। बताया जाता है कि माओवादी सशस्त्र ग्रुपों द्वारा बच्चों की भर्ती जारी रही। प्रेक्षकों ने रिपोर्ट दी कि 12 वर्ष की अल्प-आयु तक के बच्चे माओवादी युवा दलों तथा उनसे जुड़ी नागरिक सेना के सदस्य थे। ख़बर है कि बच्चे हथियारों और काम चलाऊ विस्फोटक उपकरणों (आईईडी) का संचालन करते थे। ख़बर है कि माओवादियों ने बच्चों को उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ रोक कर रखा और यदि बच्चों ने भाग निकलने की कोशिश की तो, परिवार के सदस्यों को मार डालने सहित, बदले की कठोर कार्रवाईयों की धमकी दी। माओवादी दलों के साथ पहले जुड़ी हुई कई महिलाओं के बयानों के आधार पर, सरकार ने दावा किया कि कई माओवादी कैंपों में, बलात्कार और दुर्व्यवहार के अन्य रूपों सहित, यौन हिंसा एक आम व्यवहार था। पुलिस

संपर्कों का हवाला देते हुए एनजीओ ने बताया कि झारखंड में माओवादी ग्रुपों द्वारा काम पर रखे गए बच्चों को अपने साथ आईईडी विस्फोटित करने वाले यंत्र रखने पर मजबूर किया जाता था। पुलिस ने इन चालक-यंत्रों को पुनः प्राप्त करने के लिए बच्चों का इस्तेमाल नहीं किया।

सरकारी सूत्रों के अनुसार, माओवादी सशस्त्र ग्रुपों ने सुरक्षाबलों के साथ मुठभेड़ों में बच्चों को मानवीय ढाल के रूप में इस्तेमाल किया। प्रभावित क्षेत्रों में माओवादियों द्वारा स्कूलों पर हमलों से शिक्षा तक बच्चों की पहुंच प्रभावित होती रही। स्कूलों का सैनिक निवास और अड्डों के रूप में इस्तेमाल किए जाने की रिपोर्टें मिलना जारी रहा। स्कूलों के निकट सरकारी सुरक्षा बलों की तैनाती चिंता का विषय बना रहा। ऐसी रिपोर्टें थीं कि छत्तीसगढ़ में सशस्त्र दलों ने स्कूलों से बच्चों की भर्ती की।

<u>संघर्ष-संबंधित अन्य दुर्व्यवहार</u>: आंतरिक विस्थापन अनुवीक्षण केंद्र का अनुमान था कि 2016 के दौरान देश में संघर्षों, हिंसा, और प्राकृतिक संकटों के कारण 28 लाख लोग विस्थापित हुए।

अगस्त में, गृह राज्यमंत्री अहीर ने संसद में निचले सदन को बताया कि देश में लगभग 62,000 पंजीकृत कश्मीरी प्रवासी परिवार थे। जम्मू और कश्मीर राज्य सरकार ने वर्ष के दौरान कश्मीर घाटी में कश्मीरी पंडितों (हिंदुओं) के प्रति धमकियों की रिपोर्ट दी। सन् 1990 के बाद से दसियों हज़ार कश्मीरी पंडित, संघर्ष और ऐसे हिंसक अभित्रास के कारण जिसमें कश्मीरी पृथकतावादियों द्वारा पूजा स्थलों को नष्ट किया जाना, यौन दुर्व्यवहार, तथा संपत्ति की चोरी शामिल है, कश्मीर घाटी से भाग कर जम्मू, दिल्ली, तथा देश के अन्य क्षेत्रों में चले गए हैं।

वर्ष के दौरान जम्मू-कश्मीर राज्य ने ऐसे 31 कश्मीरी पंडित प्रवासी परिवारों को फ्लैट आवंटित किए जो 1990 के वर्षों के दौरान घाटी छोड़कर नहीं गए थे। ये फ्लैट कश्मीरी प्रवासियों के पुनर्वास के लिए केंद्र सरकार द्वारा अनुमोदित एक कार्यक्रम के तहत निर्मित किए गए थे।

मध्यवर्ती और पूर्वी क्षेत्रों में माओवादी विद्रोहियों और सरकारी सुरक्षा बलों के बीच क़बायली जंगली क्षेत्रों में भूमि तथा खनिज संसाधनों को लेकर सशस्त्र संघर्ष जारी रहे। दक्षिण एशिया आतंकवाद पोर्टल के वर्तमान संघर्ष मानचित्र के अनुसार, माओवादी- प्रभावित क्षेत्रों में मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना,ओडीशा, छतीसगढ़, झारखंड, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, और असम शामिल हैं। मानवाधिकार समर्थकों का आरोप था कि सरकार की कार्रवाई का उद्देश्य केवल माओवादियों को कुचलना ही नहीं, बल्कि क़बायली आबादियों को अपनी ज़मीन छोड़ने पर मजबूर करना भी है, ताकि निजी क्षेत्र को उसे ख़रीदने का मौक़ा मिल सके।

छत्तीसगढ़ में उन क़बायली लोगों के लिए आंतरिक विस्थापित व्यक्ति (आईडीपी) शिविरों का कामकाज जारी रहा जो सन् 2005 में माओवादियों और बाद में विघटित कर दिए गए राज्य-प्रवर्तित नागरिक सैन्य दल साल्वा जुडूम के बीच हुई लड़ाई के दौरान विस्थापित हो गए थे।

पूरे वर्ष के दौरान मीडिया तथा शैक्षणिक संस्थानों से चाय कर्मिकों के विरुद्ध निगमों के दुर्व्यवहार की रिपोर्टें मिलती रहीं, जिनमें क़ानून के उल्लंघन भी शामिल थे। कुछ मामलों में कंपनियों द्वारा क़ानून के अनुसार आवश्यक चिकित्सीय सुविधाएं वापस ले लिए जाने के कारण हिंसक हड़तालें हुईं। अन्य रिपोर्टों से संकेत मिला कि कंपनी आवासीय क्षेत्रों के बीच खुली मल-जल नालियां बहने के चलते, श्रमिकों को स्वच्छ पानी तक पहुंच में कठिनाई हुई।

6 जनवरी को, एनएचआरसी ने पाया कि छत्तीसगढ़ पुलिस के लोगों ने सन् 2015 में बीजापुर ज़िले में 16 क़बायली महिलाओं के साथ बलात्कार किया। एनएचआरसी ने राज्य अधिकारियों को पीड़ितों को मुआवज़ा देने तथा अपराध-कर्म करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही शुरू करने का आदेश दिया। एनएचआरसी ने यौन प्रहार के आरोपों के ब्योरे की तहक़ीक़ात भी शुरू की, जिसकी पीड़ितों ने जनवरी 2016 में रिपोर्ट की थी। वर्ष के अंत तक तहक़ीक़ात की स्थिति अथवा मुआवज़ा दिए जाने के बारे में कोई नई जानकारी सामने नहीं आई।

खंड 2. नागरिक स्वतंत्रताओं का सम्मान, जिसमें शामिल है:

ए. प्रेस सहित, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

संविधान में बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रावधान है, लेकिन उसमें प्रेस की स्वतंत्रता का विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं है। सरकार ने सामान्यतः इन अधिकारों का सम्मान किया, हालांकि ऐसी घटनाएं सामने आईं जिनमें सरकार की आलोचना करने वाले मीडिया संस्थानों पर कथित रूप से सरकार ने दबाव डाला या उन्हें परेशान किया।

<u>अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता</u>: लोग नित्यप्रति ही सरकार की सार्वजनिक रूप से और निजी रूप से आलोचना करते रहे। लेकिन एचआरडब्ल्यू के अनुसार, उन लोगों पर मुक़दमे चलाने के लिये राजद्रोह और आपराधिक-मानहानि के क़ानूनों का इस्तेमाल किया गया जिन्होंने सरकारी अधिकारियों की आलोचना की या राज्य नीतियों का विरोध किया। कई मामलों में स्थानीय अधिकारियों ने लोगों को राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति पर घृणा-वक्तृत्व विरोधी क़ानूनों के तहत गिरफ़्तार किया। फ़्रीडम हाउस ने बलपूर्वक यह विचार पेश किया कि देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का ह्रास हो रहा है, और बोलने की आज़ादी पर सीधे प्रहारों के बारे में सरकार की चुप्पी की ओर ध्यान दिलाया। कुछ मामलों में खबर है कि सरकार ने उन संचार-संस्थानों को सार्वजनिक क्षेत्र के विज्ञापन नहीं दिए जिन्होंने सरकार की आलोचना की, परिणामतः कुछ संस्थान स्वयं अपने ऊपर सेंसरशिप लगाने लगे। मीडिया की चौकीदारी करने वाले, द हूट की भारत-स्वतंत्रता-रिपोर्ट में

जनवरी 2016 से अप्रैल 2017 के बीच के मामलों के ब्योरे के अनुसार, "स्वतंत्रता घटने का कुल मिलाकर एक ऐसा भाव था जो हाल के वर्षों में महसूस नहीं किया गया था"। रिपोर्ट में पत्रकारों पर कथित 54 हमलों, टेलीविज़न समाचार चैनलों पर रोक लगाने के कम से कम तीन मामलों, इंटरनेट बंद किए जाने के 45 मामलों, और व्यक्तियों तथा दलों के विरुद्ध 45 राजद्रोह मामलों का ब्यौरा दिया गया है।

12 मार्च को तमिलनाडु राज्य में पेरियार विश्वविद्यालय की एक स्नातक छात्रा को पुलिस ने तब पकड़ लिया जब वह पुडुकोट्टई ज़िले में नेडूवसल और तंजावुर ज़िले में कदिरामंगलम स्थित सरकार की तेल खोज परियोजनाओं के विरुद्ध जारी प्रतिवाद प्रदर्शनों के समर्थन में पर्चियां बांट रही थी। पुलिस ने गुंडा क़ानून की उस धारा का हवाला दिया, जो आदतन-अपराधियों को ज़मानत की किसी भी संभावना के बिना, एक वर्ष तक की निवारक नजरबंदी की अनुमति देती है। मुख्यमंत्री एडाप्पडी के. पलानीस्वामी ने, जिनके पास गृह मंत्रालय भी है, यह कहते हुए, छात्रा को हिरासत में लिए जाने की हिमायत ली, कि वह "विभिन्न प्रतिवादों में भाग लेकर जनता की शांति भंग कर रही थी।"

13 सितंबर को, आरटीआई के सक्रियवादी और भ्रष्टाचार विरोधी संगठन कृषक मुक्ति संग्राम समिति के अध्यक्ष, अखिल गोगोई को असम में राजद्रोह के आरोपों में उस समय गिरफ़्तार कर लिया जब एक ही दिन पहले उसने सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) की विभिन्न नीतियों की आलोचना करते हुए भाषण दिया था। इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा गोगोई पर माओवादी होने का ठप्पा भी लगाया गया। वर्ष के अंत तक उसका मुक़दमा जारी था।

<u>प्रेस और मीडिया स्वतंत्रता</u>: स्वतंत्र संचार माध्यम आमतौर पर व्यापक विविधता वाले विचार प्रस्तुत करते रहे। क़ानून ऐसी विषय वस्तु की मनाही करता है जो धार्मिक भावनाओं को हानि पहुंचाए या दलों के बीच शत्रुता भड़काए, और अधिकारियों ने मुद्रित संचार साधनों, प्रसारण मीडिया, तथा पुस्तकों के प्रकाशन और वितरण पर पाबंदियां लगाने के लिए उन धाराओं का हवाला दिया।

5 जून को सीबीआई के अधिकारियों ने एनडीटीवी के संस्थापक प्रणव रॉय के घर और दफ्तरों की धोखाधड़ी के आरोपों में तलाशी ली। एनडीटीवी ने इन छापों को "प्रेस की स्वतंत्रता पर खुला राजनीतिक हमला" क़रार दिया। अन्य समाचार एजेंसियों ने बीजेपी के नेतृत्व के बारे में एनडीटीवी की आलोचनात्मक रिपोर्टों की रोशनी में इन छापों को राजनीतिक प्रकार का बताया। भारत के संपादक संघ ने इन छापों पर चिंता व्यक्त की और सीबीआई से क़ानून की समुचित प्रक्रिया और मीडिया की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बनाए रखने की मांग की। 11 सितंबर को, हिंदुस्तान टाइम्स (एचटी) की मालिक शोभना भारतीय ने प्रधान संपादक बॉबी घोष के मीडिया संस्थान से प्रस्थान का ऐलान किया। घोष, प्रधानमंत्री मोदी सहित, बीजेपी नेतृत्व का आलोचक रहा था, और वह मुसलमानों; दलितों; महिलाओं; स्त्री समलैंगिकों, पुरुष समलैंगिकों, द्विलिंगियों,

परालैंगियों और अंतर-लैंगियों (एलजीबीटीआई); तथा भेदभाव का शिकार अन्य ग्रुपों के विरुद्ध हिंसा के बारे में एचटी के "घृणा खोजी" का निर्माता था।

5 नवम्बर को, व्यंग्य चित्र बनाने वाले जी.बाला को अपने फेसबुक पृष्ठ पर, तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एडापट्टी के. पलानीस्वामी तथा राज्य सरकार के अन्य अधिकारियों की आलोचना करने वाला कार्टून अंकित करने के लिए गिरफ़्तार कर लिया गया। बाला के व्यंग्य चित्र में यह सुझाव दिया गया था कि नागरिकों की समस्याओं पर ध्यान देने की बजाय यह अधिकारी स्वयं अपने को अमीर बनाने में तल्लीन हैं। पुलिस ने पुष्टि की कि बाला पर इलेक्ट्रॉनिक रूप में अश्लील सामग्री प्रकाशित करने और अपमानजनक सामग्री मुद्रित करने का अभियोग लगाया गया है और गिरफ़्तार किया गया है। उन्हें 6 नवंबर को ज़मानत दे दी गई।

सरकार में एएम रेडियो स्टेशनों पर अपना एकाधिकार बनाए रखा और यह प्रसारण सरकारी मिल्कियत वाले ऑल इंडिया रेडियो (एआईआर) तक सीमित रखा, तथा एफ़एम रेडियो के अनुज्ञापत्रों को मनोरंजन एवं शैक्षणिक सामग्री के लिए सीमित किया। व्यापक रूप से वितरित निजी उपग्रह टेलीविज़न चैनलों ने, सरकारी मिल्कियत वाले टेलीविज़न नेटवर्क, दूरदर्शन, से होड़ ली। सरकारी मिल्कियत वाले प्रसारकों में राजनीतिक हस्तक्षेप के कुछ आरोप सामने आए। 15 अगस्त को, त्रिपुरा के मुख्यमंत्री माणिक सरकार ने आरोप लगाया कि दूरदर्शन और एआईआर ने स्वाधीनता दिवस पर उनकी टिप्पणी प्रसारित करने से इंकार कर दिया। राज्य सरकारों ने कुछ पुस्तकों के आयात और बिक्री पर ऐसी सामग्री के कारण निषेध लगा दिया जिसे सरकारी सेंसरों ने भड़काऊ, अथवा सांप्रदायिक या धार्मिक तनाव उकसाने वाला माना।

<u>हिंसा और उत्पीड़न</u>: कुछ पत्रकारों और मीडिया के लोगों को अपनी रिपोर्टिंग के कारण खबर है कि हिंसा तथा उत्पीड़न भुगतना पड़ा। वर्ष के दौरान भारत की प्रेस परिषद की एक उप समिति ने प्रेस की स्वतंत्रता तथा पत्रकारों की सत्य-निष्ठा की हिफ़ाज़त और संरक्षण के लिए सरकार को एक रिपोर्ट जारी की; रिपोर्ट में इस बात को रेखांकित किया गया कि सन् 1990 के बाद से कम से कम 80 पत्रकार मारे गए हैं और केवल एक दोष-सिद्धि हुई है।

ऑनलाइन तथा मोबाइल उत्पीड़न, खासतौर पर महिला पत्रकारों का, काफ़ी फैला हुआ था, जबकि कुछ महिला सक्रियवादियों और पत्रकारों ने बताया कि उन्हें हर सप्ताह "ट्रौल" से हज़ारों अपमानजनक ट्वीट प्राप्त होते हैं। इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए एचटी ने एक ट्रोलिंग विरोधी अभियान शुरू किया।

पत्रकारों की हिफ़ाज़त के लिए समिति (सीपीजे) ने पत्रकारों पर हमलों को लेकर चिंता व्यक्त की। उदाहरण के लिए, सीपीजे के अनुसार, 5 फ़रवरी को आंध्र प्रदेश में एक स्थानीय तेलुगू समाचार पत्र के एक पत्रकार का सत्तारूढ़ तेलुगू देशम पार्टी से सम्बद्ध एक विधायक के समर्थकों ने, कथित रूप से, पीछा किया और उस पर

हमला किया। बताया जाता है कि यह हमला, जिसे गुमनाम ढंग से वीडियो पर रिकॉर्ड किया गया, एक स्थानीय पत्रिका में प्रकाशित उस अन्वेषणात्मक रिपोर्ट के प्रतिशोध में किया गया, जिसमें उस विधायक और उसके भाई पर ग़ैर क़ानूनी रूप से रेत के उत्खनन और बैंक ऋण की अदायगी न करने का आरोप लगाया था।

5 सितंबर को, वरिष्ठ पत्रकार और सक्रियवादी गौरी लंकेश की बेंगलुरु में उनके घर पर 3 हमलावरों ने गोली मारकर हत्या कर दी। इस हत्या की जांच करने के लिए कर्नाटक सरकार ने एक विशेष तहक़ीकात दल की स्थापना की। 11 सितम्बर को मानवाधिकारों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के उच्चायुक्त ज़ैद राद अल-हुसैन ने यह कहते हुए लंकेश की हत्या को रेखांकित किया कि वह एक ऐसी पत्रकार थीं जिन्होंने सांप्रदायिकता और घृणा के क्षयकारी प्रभाव को उजागर किया। वर्ष की समाप्ति तक कोई गिरफ़्तारी नहीं की गई थी और तहक़ीकात जारी थी।

20 सितंबर को, टेलीविज़न पत्रकार शांतौ भौमिक को उस समय पीटा गया और छुरा मार कर उनकी हत्या कर दी गई जब वह पुलिस और त्रिपुरा के जनजाति मोर्चे के बीच एक भिड़ंत की रिपोर्ट दे रहे थे। भारत की राष्ट्रीय पत्रकार यूनियन तथा अन्य ने भौमिक की हत्या की भर्त्सना की है और पत्रकारों की सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए एक पत्रकार संरक्षण क़ानून की मांग की है।

3 अक्टूबर की एक रिपोर्ट में, संस्था रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स ने बताया कि पत्रकार दीक्षा शर्मा को बलात्कार और हत्या की धमकी देने वाले संदेश प्राप्त हुए। रिपोर्ट में अन्य के अलावा, *एशियन न्यूज़ इंटरनेशनल* के अभय कुमार, समाचार पत्र *द हिंदू* के मोहम्मद अली, *फर्स्टपोस्ट* के देवव्रत घोष, और एनडीटीवी से सोनल मेहरोत्रा कपूर के विरुद्ध धमकियों की बात भी शामिल थी।

<u>सेंसरशिप अथवा सामग्री पाबंदियां</u>: जून में केंद्र के सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने केरल में एक फ़िल्म उत्सव के दौरान तीन फ़िल्में दिखाए जाने की अनुमति देने से इंकार कर दिया। उत्सवों में दिखाई जाने वाली फ़िल्मों के लिए केंद्रीय फ़िल्म प्रमाणन बोर्ड (सीबीएफसी) के प्रमाणन की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन उन्हें मंत्रालय से सेंसर-छूट प्राप्त करनी होती है। वे तीन फ़िल्में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रतिवादों, कश्मीर में अशांति, और पीएचडी के छात्र सक्रियवादी रोहित वेमुला की आत्महत्या के बारे में थीं।

जुलाई में सीबीएफसी ने नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन के बारे में एक वृत्तचित्र के सार्वजनिक प्रदर्शन को अनुमति देने से इंकार कर दिया। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, सीबीएफसी ने वृत्तचित्र के उन हिस्सों पर एतराज़ जताया जहां सेन ने “गाय”, “गुजरात”, “हिंदू भारत”, और “हिंदुत्व”, शब्दों का इस्तेमाल किया था। उस वृत्तचित्र के निर्माता सुमन घोष ने सीबीएफ़सी की इस हिदायत को मानने से इनकार कर दिया कि इन चार शब्दों को मूक कर दिया जाए।

मानहानि/निंदा क़ानून: अप्रैल में बीजेपी ने दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज की कि उन्होंने राष्ट्रीय चुनाव आयोग पर मतदान मशीनों से छेड़छाड़ करने का आरोप लगाया जिनके, पंजाब राज्य चुनावों में, इस्तेमाल पर केजरीवाल की आम आदमी पार्टी ने विरोध दर्ज किया था और हार गई थी।

राष्ट्रीय सुरक्षा: कुछ मामलों में मीडिया की सामग्री को सीमित करने के लिए सरकारी अधिकारियों ने राष्ट्रहित की हिफ़ाज़त करने वाले क़ानूनों का हवाला दिया। मिसाल के तौर पर, 26 अप्रैल को, जम्मू और कश्मीर राज्य ने लगातार सड़क प्रदर्शनों के बाद इंटरनेट सेवा प्रदान करने वालों को आदेश दिया कि वे फेसबुक, व्हाट्सऐप, और ट्विटर सहित 22 सामाजिक मीडिया और तत्काल संदेश-वहन स्थलों को एक महीने के लिए अवरुद्ध कर दें। यह पहला अवसर था जब राज्य सरकार ने इंटरनेट तथा डाटा सेवाओं को सीमित करने की बजाय अलग-अलग सोशल मीडिया वेबसाइटों पर प्रतिबंध लगाया।

ग़ैर सरकारी प्रभाव: जून 2016 में जारी किए गए एक बयान में संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार संबंधी प्रतिवेदकों ने यह विचार व्यक्त किया कि विदेशी योगदान नियमन क़ानून (एफ़सीआरए) की "धाराओं का उन संगठनों को ख़ामोश करने के लिए अधिकाधिक इस्तेमाल किया जा रहा है जो ऐसी नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय, अथवा सांस्कृतिक, प्राथमिकताओं की हिमायत में संलग्न है जो शायद सरकार समर्थित प्राथमिकताओं से भिन्न हों"। बयान में ग्रीनपीस इंडिया, लॉयर्स कलेक्टिव, और सबरंग ट्रस्ट सहित एनजीओ के लिए विदेशी बैंकिंग लाइसेंस स्थगन को रेखांकित किया गया। मई में एचआरडब्ल्यू ने संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों से आग्रह किया कि वे भारत से मांग करें कि वह ऐसे एनजीओ तथा अन्य को लक्ष्य बनाना बंद करे जिन्होंने सरकार या उसकी नीतियों की आलोचना की है।

इंटरनेट स्वतंत्रता

सरकार द्वारा इंटरनेट पहुंच पर पाबंदियां लगाने, इंटरनेट तक पहुंच में विघटन, तथा ऑनलाइन सामग्री के सेंसर करने के कुछ मामले सामने आए। ऐसी भी रिपोर्टें थीं कि कभी-कभी सरकार ने, चैट-रुम और व्यक्ति से व्यक्ति संचारण जैसे, डिजिटल संचार साधनों का इस्तेमाल करने वालों को मॉनिटर किया। क़ानून सरकार को इंटरनेट साइटों और सामग्री को अवरुद्ध करने की इजाज़त देता है तथा ऐसे संदेश भेजने को अपराध ठहराता है जिन्हें सरकार भड़काने वाला या आपत्तिजनक मानती है। राज्य और केंद्र, दोनों सरकारों को कंप्यूटर सूचना को अवरुद्ध करने, बीच में रोककर सुनने, मॉनीटर करने तथा विगूढ़ करने के निर्देश देने का अधिकार प्राप्त है।

सन् 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने सूचना टेक्नोलॉजी क़ानून की उस धारा को रद्द कर दिया जिसके परिणाम में 2012 और 2015 के बीच सोशल मीडिया पर प्रकाशित सामग्री के लिए उल्लेखनीय संस्था में गिरफ़्तारियां हुई थीं। सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य धाराओं को बरक़रार रखा जो सरकार को कुछ ख़ास क़िस्म की ऑनलाइन सामग्री को अवरुद्ध करने का अधिकार देती हैं। इनमें से एक धारा सरकार को "भारत की प्रभुसत्ता और

अखंडता, भारत की रक्षा, राज्य की सुरक्षा, तथा विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों या सार्वजनिक व्यवस्था के हित में" अदालत के अनुमोदन के बिना, ऑनलाइन सामग्री को अवरुद्ध करने के आदेश देने का अधिकार देती है।

7 अगस्त को, केंद्रीय संचार मंत्रालय ने नए नियमों का एलान किया जो सरकार को " सार्वजनिक आपात् स्थिति" के दौरान या "सार्वजनिक सुरक्षा" के लिए टेलीफ़ोन और इंटरनेट सेवाओं को अस्थाई तौर पर बंद करने की इजाज़त देते हैं। विशेषज्ञों ने ध्यान दिलाया कि इन नियमों का अर्थ है कि इंटरनेट को बंद करने का काम अधिक सुव्यवस्थित ढंग से किया जा सकेगा, लेकिन मनमानी सेंसरशिप को लेकर चिंताएं भी व्यक्त कीं। एचआरडब्ल्यू के अनुसार जनवरी से जून तक, सरकार ने देश भर में विभिन्न स्थानों पर इंटरनेट को अस्थाई तौर पर 20 बार बंद किया। सन् 2016 में ऐसा 31 बार किए जाने की रिपोर्ट थी।

इंटरनेट तक पहुंच और सेवाएं जम्मू कश्मीर राज्य में कई हफ़्तों चली हिंसा और कर्फ़्यू के दौरान अक्सर कटौती का शिकार हुईं तथा कभी-कभी देश के अन्य भागों में भी, जिसमें हरियाणा भी शामिल है जहां अगस्त में धार्मिक संप्रदाय डेरा सच्चा सौदा द्वारा व्यापक प्रदर्शनों के दौरान ऐसा हुआ। सरकार का दावा था कि ऐसी हिंसा को रोकने के लिए जिसमें सोशल मीडिया आग में घी का काम करता है कभी-कभी इंटरनेट तक पहुंच सीमित करना ज़रूरी हो जाता है। एचआरडब्ल्यू के अनुसार अधिकारी कभी-कभी क़ानूनी प्रक्रिया का पालन करने में नाकाम रहे और कुछ मामलों में अनावश्यक तौर पर शट-डाउन के आदेश दे दिए गए।

जुलाई में मीडिया की चौकीदार द हूट ने रिपोर्ट दी कि इंटरनेट शट-डाउन की संख्या जो सन् 2016 की पहली तिमाही में 8 थी, इस वर्ष के पहले 6 महीनों बढ़कर 23 पर पहुंच गई।

जुलाई और अगस्त में केंद्रीय सरकार के इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने, जम्मू और कश्मीर राज्य की पुलिस द्वारा दाखिल एक शिकायत के आधार पर, ख़बर है कि ट्विटर से कहा है कि वह 248 खातों, ट्विटों और हैशटैगों को, उनके द्वारा पेश ख़तरों को देखते हुए, अवरुद्ध करे। मंत्रालय ने अनुरोध किया कि 115 खातों और ट्विटों की सूची, जो की "आपत्तिजनक सामग्री का प्रचार" करते पाए गए, "सार्वजनिक व्यवस्था के हित में और साथ ही किसी संज्ञेय अपराध को रोकने के लिए...." अवरुद्ध की जाए।

सामाजिक मीडिया पर आपत्तिजनक या अपमानजनक सामग्री पोस्ट करने के लिए लोगों पर अभियोग लगाया जाना जारी रहा। मिसाल के तौर पर, बीजेपी ने दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल पर चुनाव संबंधित सामग्री फेसबुक पर पोस्ट करने के लिए आरोप दाखिल किए। मध्यप्रदेश में एक व्यक्ति इन आरोपों पर गिरफ़्तार किया गया कि उसने ऐसी तस्वीर पोस्ट करके धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंचाई जिसमें एक साधु मांस खरीदते हुए दिखाई दे रहा था। हिंदू राष्ट्रवादी योगी आदित्यनाथ को उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री नियुक्त

किए जाने के बाद, खबर है कि कई आलोचकों पर उनके द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई सामग्री को लेकर अभियोग लगाया गया।

केंद्रीय मॉनिटरिंग प्रणाली (सीएमएस) के जरिए सरकारी एजेंसियों को उसी समय पर इलेक्ट्रॉनिक संचार संवादों को मॉनिटर करने का अवसर मिलता रहा, उस व्यक्ति या किसी न्यायाधीश को बताए बगैर। सीएमएस इलेक्ट्रॉनिक निगरानी के जरिए डेटा एकत्र करने का एक व्यापक कार्यक्रम है जो टेलीमैटिक्स विकास केंद्र द्वारा स्थापित किया गया है, जो सरकार की मिल्कियत वाला दूर संचार प्रौद्योगिकी विकास केंद्र है। सीएमएस के जरिए सुरक्षा एजेंसियों और आयकर अधिकारियों को दूरसंचार नेटवर्क तक केंद्रीकृत पहुंच प्राप्त होती है और मोबाइल, लैंडलाइन, तथा सैटेलाइट टेलीफ़ोन पर, और इंटरनेट साधन पर, आवाज़ को सुनने और रिकॉर्ड करने की, तथा निजी ईमेल और मोबाइल फ़ोन पर टेक्स्ट संदेश पढ़ने की, एवं उसी समय लोगों की भौगोलिक स्थिति की खोज ख़बर रखने की क्षमता प्राप्त होती है। अदालतों अथवा संसद की निगरानी के बिना, अधिकारी सोशल मीडिया पर साझा की गई सामग्री को मॉनिटर करने तथा खोज एन्जिनों पर उपभोक्ता के खोज इतिहासों का लेखा जोखा रखने के लिए भी इसका इस्तेमाल कर सकते हैं। यह मॉनिटरिंग सुविधा 9 सुरक्षा एजेंसियों को प्राप्त थी जिनमें ख़ुफ़िया ब्यूरो, अनुसंधान एवं विश्लेषण खंड, और गृह मंत्रालय शामिल हैं।

अगस्त में, संचार मंत्रालय में राज्यमंत्री मनोज सिंह ने संसद के उच्च सदन को बताया कि सरकार ने दूरसंचार को क़ानून-सम्मत ढंग से बीच में रोकने और मॉनिटर करने की प्रक्रिया को स्वचालित बनाने के लिए सीएमएस स्थापित करने का निर्णय लिया है। बीच में रोकने और मॉनिटर करने को संचालित करने वाले क़ानून में अनधिकृत अवरोधन को रोकने के लिए एक निरीक्षण तंत्र की व्यवस्था है। अनधिकृत अवरोधन की सज़ा के रूप में जुर्माना और/अथवा अधिकतम 3 वर्ष तक की क़ैद की सज़ा शामिल है।

फ़्रीडम हाउस ने, भारत के बारे में 2016 की अपनी देश रिपोर्ट में, इंटरनेट उपभोक्ता अधिकारों के बारे में, जिसमें पहुंच सुलभता, सामग्री पर सीमाएं, और व्यक्तिगत अधिकारों के उल्लंघन शामिल हैं, भारत को "आंशिक रूप से स्वतंत्र" देश आंका है। फ्रीडम हाउस के अनुसार, इंटरनेट आजादी में, सन् 2014 और 2015 में हुई वृद्धि का प्रतिकार करते हुए, सन् 2016 में कुछ कमी आई। इस एनजीओ ने रिपोर्ट दी कि स्थानीय अधिकारियों के आदेश पर नेटवर्क बंद किए जाने की संख्या में वृद्धि हुई। इस रिपोर्ट में ऑनलाइन पोस्ट की गई सामग्री के लिए इंटरनेट उपभोक्ताओं पर किए गए शारीरिक हमलों के लिखित प्रमाण पेश किए गए और कहा गया कि व्होट्सऐप पर प्रचलित सूचना के लिए कम से कम 17 व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया, जिनमें अन्य ग्रुप सदस्यों द्वारा साझा की गई सामग्री के आधार पर ग्रुप प्रबंधक शामिल हैं।

अधिकारियों को वर्जित सामग्री प्रदर्शित करने के लिए खोज-एन्जिनों को उत्तरदायी ठहराने का अधिकार प्राप्त है, और सरकार ने कभी-कभार इंटरनेट कंपनियों से उपभोक्ता डाटा का अनुरोध भी किया। फेसबुक की अप्रैल की पारदर्शिता रिपोर्ट के अनुसार, सरकार ने 2016 की दूसरी छमाही में डेटा के 7,289 अनुरोध किए, और

फेसबुक ने उनमें से 52 प्रतिशत अनुरोधों का पालन किया। गूगल ने भी अपनी सबसे ताजा पारदर्शिता रिपोर्ट में उपभोक्ता डाटा के लिए सरकार के अनुरोधों में वृद्धि को रेखांकित किया। 1 जनवरी से 30 जून तक, ट्विटर ने सरकार से खाता सूचनाओं के बारे में 261 अनुरोध प्राप्त होने की रिपोर्ट दी-- जो कि पिछले 6 महीनों के मुक़ाबले 55 प्रतिशत की वृद्धि है-- और खाते रद्द किए जाने के 102 अनुरोध।

शैक्षणिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक घटनाएं

सरकार ने यात्रा पर आए विदेशी विशेषज्ञों और विद्वानों की यात्रा और गतिविधियों पर कभी-कभार पाबंदियां लागू कीं; लेकिन अधिकांश मामलों में सरकार ने अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक सम्मेलनों और आदान-प्रदानों को समर्थन दिया और वीज़ा जारी किए।

तेलंगाना और आंध्र आंध्र प्रदेश में व्यस्य जाति दलों से यह शिकायतें प्राप्त होने के बाद पुलिस ने निचली जाति के दलित शिक्षाविद कांचा इलैया शेफ़र्ड के ख़िलाफ़ मामले दर्ज किए कि उनकी पुस्तक सामाजिक स्मगलर्लु कोमाटोल्लू में उस समुदाय का नकारात्मक रोशनी में चित्रण किया गया है। 12 सितम्बर को, हैदराबाद पुलिस ने व्यस्य जातीय संगठनों तथा इलैया द्वारा एक-दूसरे के ख़िलाफ़ शिकायतें दर्ज किए जाने के बाद 3 मामले दर्ज किए। इलैया ने यह भी शिकायत की कि उन्हें अपमानजनक फ़ोन और मौत की धमकियां प्राप्त हुई हैं। 19 सितंबर को, आंध्र प्रदेश के अपराध अनुसंधान विभाग ने इलैया के ख़िलाफ़ "धर्म, स्थान के आधार पर, तथा अन्य साधनों के ज़रिये, विभिन्न दलों के बीच दुश्मनी को बढ़ावा देने" के आरोप में मामला दर्ज किया। आंध्र प्रदेश के पुलिस महानिदेशक एन. सम्बाशिव राव ने बताया कि पुलिस यह जांच कर रही है कि क्या उस पुस्तक पर निषेध लगाने की आवश्यकता है।

बी. शांतिपूर्ण ढंग से एकत्र होने और संघ बनाने की स्वतंत्रताएं

क़ानून शांतिपूर्ण ढंग से एकत्र होने और संघ बनाने की स्वतंत्रता देता है, और सरकार ने सामान्यतः इन अधिकारों का सम्मान किया।

शांतिपूर्ण ढंग से एकत्र होने की स्वतंत्रता

क़ानून शांतिपूर्वक एकत्र होने की स्वतंत्रता देता है। अधिकारियों ने अक्सर यह मांग की कि जुलूसों या प्रदर्शनों से पहले उनकी सूचना दी जाए और अनुमति-पत्र प्राप्त किया जाए। स्थानीय सरकारों ने शांतिपूर्ण ढंग से प्रतिवाद करने के अधिकार का आमतौर पर सम्मान किया, केवल जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर, जहां राज्य सरकार ने पृथकतावादी राजनीतिक पार्टियों को सार्वजनिक सभाओं के लिए परमिट देने से कभी-कभार इनकार, और बताया जाता है कि सुरक्षाबलों ने कभी कभार शांतिपूर्ण प्रतिवाद में संलग्न राजनीतिक दलों के सदस्यों पर प्रहार किया (देखें खंड-1.जी.)। जम्मू और कश्मीर राज्य में नागरिक अशांति की अवधियों के दौरान, अधिकारियों ने सार्वजनिक सभाओं पर निषेध लगाने या कर्फ्यू लागू करने के इस क़ानून का इस्तेमाल किया।

स्थानीय पुलिस सहित, सुरक्षाबलों ने अक्सर प्रदर्शनों को विघटित किया तथा प्रतिवादियों को तितर-बितर करने के प्रयास के दौरान अतिशय ताकत का इस्तेमाल किया।

17 से 23 जनवरी तक, पारंपरिक तमिल खेल जलिकट्टू को, जो सांड को वश में करने का खेल है, और जिसे सन 2014 में निषिद्ध कर दिया गया था, उसे वैध बनाने की मांग में चेन्नई तथा तमिलनाडु के अन्य भागों में हजारों प्रदर्शनकारी जमा हुए। कुछ प्रतिवादियों ने आरोप लगाया कि 23 जनवरी को शांतिपूर्ण सभाओं के तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने अनुपातहीन ताक़त का इस्तेमाल किया, जिसके परिणाम में व्यापक अशांति फैली और राज्य भर में अलग-अलग इलाक़ों में हिंसाएं सामने आईं।

अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों के आयोजन पर पाबंदियां थीं। अधिकारियों की मांग थी कि एनजीओ अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करने से पहले गृह मंत्रालय से अनुमोदन प्राप्त करें। अधिकारियों ने नैत्यक रुप से ऐसी अनुमति प्रदान की, हालांकि कुछ मामलों में अनुमोदन प्रक्रिया लंबी थी। कुछ मानवाधिकार दलों का दावा था कि इस प्रथा से सरकार को एनजीओ के काम पर अनकहा नियंत्रण प्राप्त हो जाता है तथा यह सभा करने और संघ बनाने की स्वतंत्रताओं पर पाबंदी के समान है।

संघ बनाने की स्वतंत्रता

क़ानून संघ बनाने की स्वतंत्रता देता है। जबकि सरकार ने आम तौर पर इस अधिकार का सम्मान किया, लेकिन ऐसे एनजीओ की गतिविधियों पर सरकार का नियमन बढ़ने से चिंता पैदा हुई जिन्हें विदेशी निधियन प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, कुछ मामलों में सरकार ने कुछ एनजीओ के लिए विदेशी निधि प्राप्त करने के लिए "पूर्व अनुमोदन" आवश्यक बना दिया, और अन्य मामलों में एफसीआरए पंजीकरण रद्द कर दिया या उसके नवीकरण से इंकार कर दिया। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, जो एनजीओ कथित रूप से समुचित अनुमतियों के बिना विदेशी निधियन प्राप्त करते हैं या विदेशी और घरेलू निधियन धाराओं को ग़ैरक़ानूनी ढंग से सम्मिश्रित करते हैं सरकार ने उनके विदेशी बैंक लाइसेंस स्थगित करने या खाते अनुपलब्ध बनाने के लिए कदम उठाए। कुछ मानवाधिकार संगठनों ने दावा किया कि कभी-कभी कुछ विशिष्ट एनजीओ को लक्ष्य बनाने के लिए इन कार्रवाइयों का इस्तेमाल किया गया।

मार्च में एनजीओ कम्पैशन इंटरनेशनल ने, जिसे सरकार की पूर्व-अनुमोदन सूची में दाखिल कर दिया गया था, अपने कार्यान्वयन साझेदारों को धन हस्तांतरित करने में सक्षम न रहने के कारण अपना कामकाज बंद कर दिया। मानवाधिकार एनजीओ द लॉयर्स कलेक्टिव का सन् 2016 में जब एफसीआरए पंजीकरण रद्द कर दिया गया तो इसके बाद वह पंजीकरण नहीं करा सका। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, 10 अप्रैल को, गृह मंत्रालय ने सार्वजनिक स्वास्थ्य का समर्थन करने वाले दल भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्था (पीएचएफआई) का

लाइसेंस भी रद्द कर दिया। पीएचएफआई ने अपने लाइसेंस की पुनर्स्थापना के लिए सरकार से अनुरोध दाख़िल किया, जो कि वर्ष के अंत तक सरकार के विचाराधीन बना रहा।

जुलाई में, गृह राज्यमंत्री किरण रिजीजू ने संसद के निचले सदन को बताया कि 1,000 से अधिक एनजीओ के लिए विदेशी सहायता प्राप्त करने पर तब निषेध लगा दिया गया जब यह पाया गया कि उन्होंने ऐसी निधियों का "दुरूपयोग" किया था। उन्होंने कहा कि 2,000 से अधिक एनजीओ से कहा गया है कि वे विदेशों से कोष प्राप्त करने के लिए निर्दिष्ट अपने मौजूदा बैंक खातों की अभीपुष्टि करें। उन सभी संगठनों के लिए एफसीआरए के तहत पंजीकरण ज़रूरी है जिन्हें विदेशों से वित्तीय सहायता प्राप्त होती है।

एनजीओ ने सरकार द्वारा एफसीआरए के प्रवर्तन के बारे में चिंता व्यक्त करना जारी रखा जिसकी धाराएं विदेशी निधियन प्राप्त कुछ एनजीओ को ऐसी गतिविधियों में भाग लेने की मनाही करती हैं जो सरकार के विचार में “राष्ट्रीय अथवा सार्वजनिक हित” में नहीं है, जिससे कुछ सभ्य समाज संगठनों के काम में कमी आती है। कुछ एनजीओ ने उन संगठनों को डराने धमकाने के लिए इस क़ानून को राजनीति-प्रेरित कारणों से लागू करने पर चिंता व्यक्त की जो सामाजिक मुद्दों पर ध्यान देते हैं या सरकार अथवा उसकी नीतियों की आलोचना करते हैं, उनकी दलील थी कि क़ानून में “सार्वजनिक हित” और “राष्ट्रीय हित” जैसी व्यापक और अस्पष्ट शब्दावली के इस्तेमाल के कारण उसका दुरुपयोग किए जाने का मार्ग खुल जाता है। कुछ बहुराष्ट्रीय और घरेलू कंपनियों ने यह भी कहा कि लंबी और पेचीदा पंजीकरण प्रक्रिया के कारण कुछ मामलों में यह क़ानून कंपनियों की सरकार आदेशित सामाजिक उत्तरदायित्व की जिम्मेदारियों को पूरा कर पाना कठिन बना देता है।

विशेषज्ञों ने यह रिपोर्ट भी दी कि नए एनजीओ के लिए एफसीआरए पंजीकरण प्राप्त करना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा है। हालांकि क़ानून आवेदन पर प्रक्रिया पूरी करने के लिए 90 दिन की सीमा लागू करता है, लेकिन एफसीआरए अर्ज़ियां कभी-कभी इस से महीनों ज़्यादा लम्बे समय तक विचाराधीन रहीं।

अप्रैल 2016 में संयुक्त राष्ट्र संघ के एकत्र होने तथा संघ बनाने की स्वतंत्रता के बारे में विशेष प्रतिवेदक ने एक विधि-परक विश्लेषण प्रकाशित किया जिसमें दावा किया गया कि एफसीआरए अंतरराष्ट्रीय क़ानून, सिद्धांतों, और मानकों के अनुरूप नहीं है। जून 2016 में संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवधिकार रक्षकों, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, तथा एकत्र होने और संघ बनाने की स्वतंत्रता संबंधी विशेष प्रतिवेदकों ने सरकार से एफसीआरए को रद्द करने का आग्रह किया।

सी. धर्म की स्वतंत्रता

देखें अमेरिका के विदेश मंत्रालय की *अंतरराष्ट्रीय धार्मिक स्वतंत्रता रिपोर्ट* www.state.gov/religiousfreedomreport/. पर।

डी. आने-जाने की स्वतंत्रता

क़ानून आंतरिक आवाजाही, विदेश यात्रा, उत्प्रवास, और देश प्रत्यावर्तन की स्वतंत्रता प्रदान करता है। सरकार ने आम तौर पर उन अधिकारों का सम्मान किया। 2015 में भारत और बांग्लादेश के बीच भू-सीमा समझौते के कार्यान्वयन से 50,000 से अधिक उन लोगों को मताधिकार मिल गया जो पहले राज्य-विहीन निवासी थे, और उन्हें शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच प्राप्त हो गई।

देश एक बड़ी शरणार्थी आबादी की मेजबानी करता है जिनमें 108,005 तिब्बती शरणार्थी और श्रीलंका से लगभग 63,000 शरणार्थी शामिल हैं। सरकार शरणार्थी संबंधी उच्चायुक्त कार्यालय (यूएनएचसीआर) को बर्मा तथा देश की सीमा से न सटे हुए देशों से आए 36,000 शरणार्थियों एवं शरण-इच्छुकों की सहायता करने का सामान्यतः अवसर देती है। यूएनएचसीआर के आदेश पत्र के अंतर्गत आने वाले शरणार्थियों तथा शरण प्राप्ति के इच्छुक लोगों को कुछ मामलों में लंबी अवधि के वीज़ा और निवास अनुमति-पत्रों के जरिए अपनी स्थिति को नियमित बनाने में चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

प्रवासियों, शरणार्थियों, और राज्य-विहीन व्यक्तियों के साथ दुर्व्यवहार: क़ानून में "शरणार्थी" शब्द शामिल नहीं है, और शरणार्थियों को किसी भी अन्य विदेशी की तरह माना जाता है। देश में दस्तावेज़-रहित शारीरिक उपस्थिति दंडनीय अपराध है। दस्तावेज़-रहित लोग जबरन वापसी तथा दुर्व्यवहार के लिए भेद्द्य थे।

अदालतों ने संविधान के अनुसार शरणार्थियों और शरण चाहने वालों की समुचित रुप से हिफ़ाज़त की।

शरणार्थियों ने ग़ैर सरकारी कर्ताओं द्वारा शोषण की रिपोर्ट दी जिसमें प्रहार, लिंग आधारित हिंसा, धोखाधड़ी, और श्रम शोषण शामिल है। साथ ही, घरेलू हिंसा, यौनिक दुर्व्यवहार, तथा जल्दी और जबरन विवाह की समस्याएं भी जारी रहीं। श्रीलंकाइयों के लिए शिविरों में लिंग आधारित हिंसा और यौन दुर्व्यवहार आम थे। अधिकांश शहरी शरणार्थी अनौपचारिक क्षेत्र में या सड़क पर माल बेचने जैसे धंधों में काम कर रहे थे, जहां उन्हें पुलिस की खसोट, वेतन न दिए जाने और शोषण को झेलना पड़ा।

9 अगस्त को, गृह राज्यमंत्री किरण रिजीजू ने संसद में बयान दिया कि रोहिंग्या "भारत में ग़ैरक़ानूनी आप्रवासी हैं और क़ानून के अनुसार उन्हें निर्वासित किया जा सकता है" बाद में गृह मंत्रालय के एक प्रवक्ता ने स्पष्ट किया कि सरकार यह जानने की कोशिश कर रही है कि देश में कितने शरणार्थी मौजूद हैं और राज्यों से सक्रिय रुप से योजनाएं विकसित करने को कह रही है।

देश के भीतर आवाजाही: केंद्रीय सरकार ने अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड, मिज़ोरम, मणिपुर, और जम्मू कश्मीर के कुछ भागों में विदेशियों की यात्रा पर लगी पाबंदियों में ढील दी, जिनमें पाकिस्तान, चीन, और बर्मा के विदेशी राष्ट्रिक शामिल नहीं थे। गृह मंत्रालय और राज्य सरकारों की मांग थी कि नागरिक जब कुछ खास प्रतिबंधित क्षेत्रों की यात्रा करें तो पहुंचते ही विशेष अनुमति पत्र प्राप्त करें।

विदेश यात्रा: सरकार किसी भी आवेदक को देश से बाहर ऐसी गतिविधियों में संलग्न होने के लिए पासपोर्ट जारी करने से क़ानूनी तौर पर इनकार कर सकती है जो "राष्ट्र की प्रभुसत्ता और अखंडता के प्रतिकूल हों। "

जम्मू और कश्मीर राज्य के नागरिकों के लिए पासपोर्ट जारी करने और उनके नवीकरण में देरी करने की प्रवृत्ति जारी रही, जो कभी-कभी दो वर्ष तक रही। ख़बर है कि सरकार ने जम्मू और कश्मीर में जन्मे आवेदकों के लिए, जिनमें उन सैनिक अधिकारियों के यहां जन्मे बच्चे भी शामिल हैं जो राज्य में तैनात थे, पासपोर्ट जारी करने से पहले अतिरिक्त जांच-पड़ताल और पुलिस से निर्दोष होने की रिपोर्ट प्राप्त करने की शर्त लागू की।

आंतरिक रूप से विस्थापित व्यक्ति (आईडीपी)

अधिकारियों ने देश भर में आईडीपी बस्तियां स्थापित कीं, जिनमें वे भी शामिल हैं जहां जम्मू और कश्मीर राज्य, माओवादी-प्रभावित क्षेत्रों, उत्तर पूर्वी राज्यों (देखें खंड-1.जी.), और गुजरात में आंतरिक सशस्त्र संघर्षों के कारण विस्थापित हुए लोग रह रहे हैं। आंतरिक विस्थापन को मॉनिटर करने वाले केंद्र की सन् 2016 की वार्षिक रिपोर्ट में दावा किया गया है कि लंबे समय से चले आ रहे क्षेत्रीय संघर्षों ने कम से कम 796,000 लोगों को विस्थापित किया है। संघर्ष या हिंसा के कारण विस्थापित हुए लोगों की सही संख्या का अनुमान लगा पाना कठिन था क्योंकि सरकार विस्थापित लोगों की आवाजाही को मॉनिटर नहीं करती, और मानवीय तथा मानवाधिकार एजेंसियों को शिविरों तथा प्रभावित क्षेत्र तक सीमित पहुंच प्राप्त थी। जबकि अधिकारियों ने आईडीपी शिविरों के निवासियों को पंजीकृत किया, लेकिन विस्थापित लोगों की एक अज्ञात संख्या शिविरों के बाहर रह रही थी। बहुत से आईडीपी के लिए पर्याप्त भोजन, स्वच्छ पानी, सिर छुपाने के लिए जगह, और स्वास्थ्य सेवा का अभाव था (देखें खंड-1.जी., संघर्ष-संबंधित अन्य दुर्व्यवहार)।

माओवादियों के विरुद्ध परा-सैन्य कार्रवाइयों ने छत्तीसगढ़ में दंडकारण्य जंगलों में गोट्टी कोया जनजाति के सदस्यों को विस्थापित कर दिया, जो पड़ोस में तेलंगाना के खम्माम और भूपलापल्ली ज़िलों में जाकर बस गए। सन् 2014 में नया तेलंगाना राज्य बनाने के लिए आंध्र प्रदेश के विभाजन के बाद, राज्य सरकारों ने खम्माम ज़िले के हिस्से, जहां गोट्टीकोया बस्तियां थीं, आंध्र प्रदेश को हस्तांतरित कर दिए।

एनजीओ का अनुमान है कि छत्तीसगढ़ में आईडीपी की संख्या 50 हज़ार और तेलंगाना तथा आंध्र प्रदेश में कुल मिलाकर 27,000 है। ख़बर है कि छत्तीसगढ़ सरकार ने आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के शिविरों में मौजूद आईडीपी को छत्तीसगढ़ का निवासी नहीं माना, और बताया जाता है कि आंध्रप्रदेश तथा तेलंगाना सरकारों ने उन्हें मूल सहारा प्रदान किया जिसमें खाने का राशन और बच्चों के लिए शिक्षा शामिल है। लेकिन ख़बर है तेलंगाना वन अधिकारियों ने भूपलापल्ली ज़िले में गोट्टीकोया की कई बस्तियों को इस आरोप में नष्ट कर दिया कि वे पेड़ काट कर खेती-बाड़ी के ऐसे तौर तरीकों में संलग्न थे जिन्हें कायम नहीं रखा जा सकता। 21 अप्रैल को गोट्टीकोया की कई झोपड़ियों को जला दिया गया, और 16 सितंबर को 36 झोपड़ियों को गिरा दिया गया जबकि एक औरत ने अधिकारियों को यह कार्रवाई करने से रोकने के प्रयास में स्वयं को एक पेड़ से बांध लिया। 13 अक्टूबर को हैदराबाद उच्च न्यायालय तेलंगाना सरकार को आदेश दिया कि वह गोट्टीकोया कबीले के सदस्यों को विस्थापित न करे अथवा उनकी आवास इकाइयों को न ढ़ाए।

सशस्त्र संघर्ष या जातीय अथवा सांप्रदायिक हिंसा के कारण होने वाले आंतरिक विस्थापन के विषय में राष्ट्रीय नीति या क़ानून में कुछ नहीं कहा गया है। आईडीपी के कल्याण की ज़िम्मेदारी आमतौर पर राज्य सरकारों और स्थानीय अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र में थी जिससे सेवाओं में अंतराल और उत्तरदायित्व में कमी सामने आई। केंद्र सरकार ने आईडीपी को सीमित सहायता प्रदान की, लेकिन उन्हें एनजीओ तथा मानवाधिकार संगठनों तक पहुंच प्राप्त थी, हालांकि सभी आईडीपी लोगों या सभी स्थितियों के लिए न तो वह पहुंच समान थी, और न ही सहायता।

मई में मिज़ोरम राज्य सरकार ने, जिसने पहले ब्रू शरणार्थियों का प्रत्यावर्तन स्वीकार करने से इनकार कर दिया था, 11,500 अवयस्कों सहित 20,000 ब्रू लोगों को प्रत्यावर्तित करने के लिए गृह मंत्रालय में एक योजना दाख़िल की। ब्रू आईडीपी उत्तर त्रिपुरा ज़िले में 6 राहत शिविरों में ठहरे हुए थे। मंत्रालय ने जुलाई में मिज़ोरम योजना को अनुमोदन प्रदान कर दिया। प्रत्यावर्तन प्रक्रिया अगस्त तक शुरू नहीं हो सकी क्योंकि ब्रू आईडीपी लोगों ने भूमि, सुरक्षा और पुनर्वास के बारे में नई मांगे उठाईं।

शरणार्थियों का संरक्षण

<u>आरईएफ़ओयूएलईएमईएनटी</u> (रेफ़ुल्मौ, ऐसी जगह जबरन-वापसी, जहां यातना की आशंका हो): मीडिया में पश्चिम बंगाल और मणिपुर राज्य में रोहिंग्या लोगों को सरकार द्वारा रोके जाने की घटनाओं की रिपोर्टें दी गईं। देश में ग़ैरक़ानूनी प्रवेश के लिए निर्धारित समय की क़ैद पूरी करने के बाद, ख़बर है सरकार ने रोहिंग्या लोगों को बर्मा वापिस भेजने का प्रयास किया। समझौता वार्ताओं के दौरान बर्मा सरकार ने दावा किया कि ऐसा कोई रिकॉर्ड नहीं है कि ये लोग कभी भी बर्मी नागरिक थे। अधिकांश मामलों में भारत सरकार ने उन लोगों को हिरासत में रखे रखा।

शरणागति तक पहुंच: क़ानूनी ढांचे की अनुपस्थिति में, सरकार ने अंतरराष्ट्रीय क़ानून के अनुरूप मानवीय आधारों पर स्थिति के हिसाब से कभी-कभी शरणागति प्रदान की। इस नज़रिए के परिणाम में शरणार्थी और आश्रय-प्राप्ति के इच्छुक लोगों के विभिन्न दलों के बीच संरक्षण के घटते -बढ़ते मानक सामने आए। सरकार ने तिब्बत और श्रीलंका के शरणार्थियों को मान्यता प्रदान की तथा अन्य देशों से आए लोगों के लिए शरणार्थी दर्जे के निर्धारण में यूएनएचसीआर के निर्णय का सम्मान किया।

यूएनएचसीआर ने देश में आधिकारिक उपस्थिति बनाए नहीं रखी, लेकिन सरकार ने यूएनएचसीआर कर्मिकों को शहरी केंद्रों में शरणार्थियों तक पहुंच की अनुमति दी, और श्रीलंकाई शरणार्थी प्रत्यावर्तन में सहायता देने के लिए उसे तमिलनाडु में काम करने दिया। यूएनएचसीआर ने बर्मा, और उन देशों जो सीमा से सटे हुए नहीं हैं के शरणार्थियों के शरणार्थी दर्जा निर्धारण का काम किया और आश्रय के इच्छुक लोगों का पंजीकरण किया। अधिकारियों ने यूएनएचसीआर को श्रीलंकाई शरणार्थी शिविरों, तिब्बती बस्तियों अथवा मिज़ोरम में आश्रय इच्छुकों तक सीधी पहुंच की अनुमति नहीं दी, लेकिन उसने मिज़ोरम के आश्रय-इच्छुकों को यूएनएचसीआर अधिकारियों से मिलने के लिए नई दिल्ली की यात्रा करने की अनुमति दी। यूएनएचसीआर को मिज़ोरम में आश्रय-इच्छुकों तक पहुंच प्राप्त नहीं थी। सरकार ने आम तौर पर एनजीओ, अंतरराष्ट्रीय मानवीय संगठनों, और विदेशी सरकारों को श्रीलंकाई शरणार्थी शिविरों और तिब्बती बस्तियों तक पहुंच की अनुमति दी, लेकिन आमतौर पर मिज़ोरम में आश्रय चाहने वालों तक पहुंच की इजाज़त नहीं दी।

श्रीलंका के गृह युद्ध की समाप्ति के बाद, सरकार ने श्रीलंकाइयों को शरणार्थियों के रूप में पंजीकृत करना बंद कर दिया। तमिलनाडु सरकार ने श्रीलंकाई शरणार्थियों को स्वेच्छा से स्वदेश वापसी के लिए निर्गमन अनुमति प्रदान करके यूएनएचसीआर की सहायता की।

तमिलनाडु राज्य सरकार द्वारा श्रीलंका के तमिल शरणार्थियों को उपलब्ध कराए गए लाभ केवल तमिलनाडु के भीतर ही लागू थे। तमिलनाडु में श्रीलंका के शरणार्थियों के साथ काम कर रहे एनजीओ का कहना था कि पिछली मुख्यमंत्री की मृत्यु के बाद से राज्य सरकार के भीतर शरणार्थी मामलों में सहायता करने की तत्परता में कमी आई है।

दिल्ली से बाहर के शरणार्थियों को अपने शरण-दावे रजिस्टर करने में अतिरिक्त समय और खर्च का सामना करना पड़ा।

रोजगार: सरकार ने बहुत से यूएनएचसीआर-पंजीकृत शरणार्थियों को काम करने की अनुमति प्रदान की, तथा अन्य को अनौपचारिक क्षेत्र में रोजगार मिल गया। कुछ शरणार्थियों ने नौकरी-दाताओं द्वारा भेदभाव की रिपोर्ट दी।

मूल सेवाओं तक पहुंच: हालांकि देश ने मान्यता-प्राप्त शरणार्थियों और आश्रय चाहने वालों को आम तौर पर आवास, प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, और अदालतों तक पहुंच की अनुमति दी, लेकिन यह पहुंच राज्य तथा आबादी के हिसाब से अलग-अलग रही। शरणार्थियों को सार्वजनिक सेवाओं तक पहुंच प्राप्त थी। जहां शरणार्थियों को यह पहुंच प्राप्त नहीं हुई उसमें अधिकांश का कारण यह था कि सेवा उपलब्ध कराने वाले को शरणार्थी अधिकारों की जानकारी नहीं थी। बहुत से मामलों में यूएनएचसीआर बीच में पड़कर निपटारा करने और शरणार्थी पहुंच की वकालत करने में सफल रहा। सरकार ने यूएनएचसीआर-पंजीकृत शरणार्थियों तथा आश्रय-इच्छुकों को लंबी अवधि के वीज़ा के लिए आवेदन देने की अनुमति दी जिससे काम करने की इजाज़त और उच्चतर शिक्षा तक पहुंच प्राप्त होती है। जिन आश्रय-इच्छुकों के पास दस्तावेज़ नहीं थे, यूएनएचसीआर ने पंजीकरण के बाद उन्हें एक पत्र उपलब्ध कराया जिसमें यह संकेत था कि वह व्यक्ति यूएनएचसीआर आदेशानुसार शरणार्थी दर्जे के लिए विचाराधीन है।

सरकार ने सन् 2012 में गृह मंत्रालय के रोहिंग्या लोगों को लंबी अवधि के वीज़ा दिए जाने के निर्देश को पूर्ण रूप से पूरा नहीं किया। यह वीज़ा शरणार्थियों को शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, और बैंक खातों के अतिरिक्त औपचारिक रोज़गार तक पहुंच भी उपलब्ध कराएंगे।

मां-बच्चा स्वास्थ्य कार्यक्रम जैसी सरकारी सेवाएं उपलब्ध थीं। शरणार्थी पुलिस और अदालतों से आवश्यकतानुसार संरक्षण का अनुरोध कर सकते थे।

श्रीलंका के शरणार्थियों को तमिलनाडु में काम करने की अनुमति थी। लेकिन ख़बर है कि पुलिस शरणार्थियों को अल्पसूचित रूप से शिविरों में वापस बुला लेती थी, ख़ास तौर पर चुनाव जैसे राजनीतिक रूप से संवेदनशील समयों पर, और शरणार्थियों या आश्रय-इच्छुक लोगों को कई दिनों तक शिविरों में ही बने रहने की हिदायत दी जाती थी।

सरकार ने अन्य देशों से पुनर्वास के लिए शरणार्थियों को स्वीकार नहीं किया।

राज्य-विहीन व्यक्ति

क़ानून के अनुसार राष्ट्रिकता, माता-पिता प्रदान करते हैं, और देश में जन्म लेने से स्वयत: ही राष्ट्रिकता प्राप्त नहीं हो जाती। ऐसा कोई भी व्यक्ति जो 26 जनवरी 1950 को या उसके बाद लेकिन 1 जुलाई 1987 से पहले देश में पैदा हुआ उसे जन्म के अनुसार भारतीय नागरिकता प्राप्त हो गई। जो बच्चा 1 जुलाई 1987 को या उसके बाद देश में जन्मा उसे तभी राष्ट्रिकता मिली जबकि बच्चे के जन्म के समय माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक था। अधिकारियों ने 3 दिसंबर 2004 को या उसके बाद देश में जन्मे व्यक्ति को तभी राष्ट्रिक माना जबकि माता-पिता में से कम से कम एक भारत का राष्ट्रिक था और दूसरा बच्चे के जन्म के समय ग़ैरक़ानूनी रूप

से देश में उपस्थित नहीं था। अधिकारियों ने 10 दिसंबर 1992 को या उसके बाद देश के बाहर जन्मे व्यक्तियों को राष्ट्रिक माना यदि माता-पिता से कोई एक जन्म के समय भारत का नागरिक था, लेकिन अधिकारियों ने 3 दिसंबर 2004 के बाद देश से बाहर जन्मे ऐसे व्यक्तियों को राष्ट्रिक नहीं माना, जब तक कि जन्म के एक वर्ष के भीतर किसी भारतीय वाणिज्य दूतावास में उनके जन्म को पंजीकृत न कराया गया हो। अधिकारी विशिष्ट श्रेणियों के तहत पंजीकरण के जरिए या 12 वर्ष तक देश में रहने के बाद नागरिकता प्राप्ति प्रक्रिया के जरिए भी राष्ट्रिकता प्रदान कर सकते हैं। ख़बर है कि क़ानूनी आवश्यकताएं पूरी करने के बावजूद तिब्बतियों को कभी-कभी राष्ट्रिकता प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

यूएनएचसीआर तथा एनजीओ के अनुसार, देश में राज्य-विहीन लोगों की बड़ी आबादी है, लेकिन कोई विश्वसनीय अनुमान उपलब्ध नहीं थे। राज्यविहीन आबादियों में चकमा और हजोंग शामिल थे, जो आज के बांग्लादेश से दशकों पहले भारत में दाखिल हुए थे, और वे लोग जो 1947 में उपमहाद्वीप के भारत और पाकिस्तान में विभाजन से प्रभावित हैं।

लगभग 70,000 राज्य-विहीन बांग्लादेशी चकमा लोग अरुणाचल प्रदेश में रह रहे हैं। वर्ष के दौरान सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार और अरुणाचल प्रदेश राज्य सरकार को चकमा और हजोंग शरणार्थियों के लिए राष्ट्रिकता पर विचार करने का आदेश दिया, जो लगभग 50 वर्षों से राज्य में रह रहे हैं। 1960 के दशक के आरंभिक वर्षों में बौद्ध चकमा और हजोंग भूतपूर्व पाकिस्तान (बांग्लादेश) में उत्पीड़न के कारण भाग आए थे और लगभग 15,000 अरुणाचल प्रदेश के चांगलांग ज़िले में बस गए।

श्रीलंकाई शरणार्थी शिविरों में जन्मे बच्चों को भारतीय जन्म प्रमाणपत्र प्राप्त हुए। जबकि अकेले भारतीय जन्म प्रमाणपत्र शरणार्थियों को भारतीय नागरिकता का अधिकारी नहीं बनाते, लेकिन शरणार्थी श्रीलंकाई उच्चायोग से दूतावासीय जन्म-प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए भारतीय जन्म प्रमाण पत्र पेश कर सकते हैं, जो उन्हें बाद में श्रीलंकाई राष्ट्रिकता प्राप्ति के प्रयास का अधिकार देता है। ईलम शरणार्थी पुनर्वास संगठन के अनुसार शरणार्थी शिविरों में पैदा हुए 27,000 श्रीलंकाई शरणार्थी बच्चों में से लगभग 16,000 ने चेन्नई में श्रीलंका के उच्चायोग कार्यालय में जन्म प्रमाण पत्र पेश किए हैं। वर्ष के दौरान चेन्नई में श्रीलंका के उच्चायोग ने लगभग 2,400 दूतावासीय जन्म प्रमाण पत्र जारी किए।

यूएनएचसीआर तथा शरणार्थियों की हिमायत करने वाले ग्रुपों का अनुमान था कि तमिलनाडु में रह रहे लगभग 100,000 श्रीलंकाई शरणार्थियों में से 25,000 से 28,000 के बीच लोग " हिल कंट्री" कहलाने वाले पहाड़ी इलाकों में रहने वाले तमिल हैं। जबकि श्रीलंका का क़ानून पहाड़ी इलाके के शरणार्थियों को श्रीलंका की नागरिकता प्राप्त करने के लिए शपथ-पत्र प्रस्तुत करने की अनुमति देता है, लेकिन यूएनएचसीआर का विचार है

कि जब तक श्रीलंका सरकार दस्तावेज़ों पर कार्रवाई नहीं करती, इन शरणार्थियों के राज्य-विहीन लोग बन जाने का जोख़िम है।

खंड 3. राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने की स्वतंत्रता

संविधान नागरिकों को सार्विक और सामान मताधिकार के आधार पर गुप्त मतपत्रों के ज़रिए होने वाले स्वतंत्र और निष्पक्ष आवर्ती चुनावों में अपनी सरकार चुनने की क्षमता प्रदान करता है।

चुनाव और राजनीतिक भागीदारी

हाल के चुनाव: भारत का चुनाव आयोग एक स्वाधीन संवैधानिक निकाय है जो देश भर में केंद्रीय और राज्य स्तर पर सभी चुनावों के संचालन के लिए ज़िम्मेदार है। इस वर्ष के दौरान एक राष्ट्रीय निर्वाचक मंडल ने रामनाथ कोविंद को 5 वर्ष की अवधि के लिए राष्ट्रपति चुना। उत्तरप्रदेश, गुजरात, पंजाब, उत्तराखंड, गोआ, हिमाचल प्रदेश, और मणिपुर, इन सात राज्यों ने अपनी राज्य विधानसभाएं चुनने के लिए चुनाव आयोजित किए। प्रेक्षकों ने, हिंसा की बहुत ही इक्का-दुक्का घटनाओं के बावजूद, इन चुनावों को स्वतंत्र और निष्पक्ष माना, जिनमें 30 करोड़ से अधिक लोगों ने भाग लिया।

राजनीतिक पार्टियां और राजनीतिक भागीदारी: संविधान में 18 वर्ष और उससे अधिक आयु के सभी नागरिकों के लिए सार्विक मताधिकार की व्यवस्था है। राजनीतिक पार्टियों के गठन पर, या किसी भी समुदाय के लोगों द्वारा चुनाव प्रक्रिया में भाग लेने पर कोई प्रतिबंध लागू नहीं है। चुनाव क़ानून राजनीतिक प्रचार अभियान के लिए सरकारी साधनों के इस्तेमाल पर निषेध लगाता है, और चुनाव आयोग ने इस क़ानून को कारगर ढंग से लागू किया। आयोग के दिशा निर्देशों में किसी चुनाव से 48 घंटे पूर्व मतसंख्या पूर्वानुमान पर निषेध लगाया गया है, और मतदान कर चुके लोगों से पूछताछ पर आधारित परिणाम (बहु-चरणीय चुनाव में) अंतिम चरण पूरा हो जाने से पहले जारी नहीं किये जा सकते।

महिलाओं और अल्पसंख्यकों की भागीदारी: क़ानून स्थानीय परिषदों में एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए सुरक्षित रखता है। धार्मिक, सांस्कृतिक और पारंपरिक व्यवहारों और विचारों ने महिलाओं को राजनीतिक पद के लिए समानुपातिक भागीदारी से रोका। फिर भी महिलाएं बहुत से उच्च-स्तरीय राजनीतिक पदों पर आसीन थीं, जिनमें मंत्री, संसद सदस्य, और राज्यों के मुख्यमंत्रियों के पद शामिल हैं। कोई भी क़ानून राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं या अल्पसंख्यक समुदायों के सदस्यों की भागीदारी पर कोई सीमा नहीं लगाता, और इन वर्गों ने इसमें भाग लिया।

संविधान कहता है कि ऐतिहासिक रूप से हाशिये पर रहे वर्गों की हिफ़ाज़त के लिए और संसद के निचले सदन में उन्हें प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए, हर राज्य को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए, राज्य की आबादी में उनके अनुपात के अनुसार, सीटें आरक्षित करनी होंगी। आरक्षित चुनाव-क्षेत्रों में इन समूहों से संबंध रखने वाले प्रत्याशी ही चुनाव लड़ सकते हैं। अल्पसंख्यक आबादियों के सदस्य पहले प्रधानमंत्री, उपराष्ट्रपति, मंत्रिमंडल के सदस्य, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, और संसद सदस्य रह चुके हैं।

कुछ ईसाइयों और मुसलमानों की दलितों के रूप में पहचान की गई, लेकिन सरकार ने दलितों के लिए आरक्षण हिंदुओं, सिक्खों और जैन लोगों के लिए ही सीमित रखे।

खंड 4. भ्रष्टाचार और सरकार में पारदर्शिता का अभाव

क़ानून में सरकार के सभी स्तरों पर अधिकारियों द्वारा भ्रष्टाचार के लिए आपराधिक दंडों की व्यवस्था है। लेकिन अधिकारी दंड-मुक्ति के साथ अक्सर भ्रष्टाचारी व्यवहारों में संलग्न रहे। वर्ष के दौरान सरकारी भ्रष्टाचार की बहुत सी रिपोर्टें सामने आईं।

भ्रष्टाचार: सरकार के सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार मौजूद था। भारत में अपराध के बारे में 2016 के आंकड़ों के अनुसार, सीबीआई ने भ्रष्टाचार संबंधी 673 मामले दर्ज किए। एनजीओ ने पुलिस संरक्षण, स्कूल दाखिले, पानी सप्लाई, या सरकारी सहायता जैसी सेवाओं को शीघ्रता से प्राप्त करने के लिए रिश्वत दिए जाने की रिपोर्टें दीं। सभ्य समाज संगठनों ने प्रदर्शनों और वेबसाइटों पर भ्रष्टाचार के विवरण सामने लाने जैसे तरीकों के ज़रिए, पूरे वर्ष भ्रष्टाचार की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया।

मीडिया रिपोर्टों, एनजीओ, तथा सक्रियवादियों ने आधारिक-संरचना परियोजनाओं, नशीली दवाओं के अवैध व्यापार, और उत्तर-पूर्वी राज्यों में लकड़ी की तस्करी में, ठेकेदारों, युद्धकारी दलों, और सुरक्षाबलों के बीच सांठगांठ की रिपोर्ट दी। इन रिपोर्टों में राजनीतिज्ञों, दफ़्तरशाहों, सुरक्षाकर्मिकों, और विद्रोही ग्रुपों के बीच कथित संबंधों की बात कही गई। मणिपुर और नगालैंड में राज्य सरकार की नौकरियां प्राप्त करने के लिए रिश्वत दिए जाने के व्यापक आरोप सामने आए, विशेष रूप से पुलिस और शिक्षा विभागों में।

भ्रष्टाचार ने कई बार सरकारी भ्रष्टाचार के आरोपों की तहक़ीकात करने के सरकारी कार्यक्रमों में व्यवधान डाला। 14 फरवरी को, तमिलनाडु की सत्तारूढ़ पार्टी, अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कज़गम- अम्मा, की महासचिव वी. के. शशिकला को तब भ्रष्टाचार का दोषी ठहराया गया जब सर्वोच्च न्यायालय ने 21 वर्ष पुराने

एक मुक़दमे में सुनवाई-अदालत के फ़ैसले को बहाल कर दिया। इसके अतिरिक्त, क़ानून के अनुसार शशिकला को अपनी क़ैद की अवधि पूरी कर लेने के बाद 6 वर्ष तक कोई चुनाव लड़ने से बाधित कर दिया गया।

सन् 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई को व्यावसायिक परीक्षा बोर्ड, जो कि विद्यालय प्रवेश और सरकारी सेवा परीक्षाओं का संचालन करने वाली राज्य सरकार की एक संस्था है, के भीतर धोखाधड़ी की मध्य प्रदेश राज्य सरकार द्वारा की जा रही तहक़ीकात को अपने हाथ में ले लेने का आदेश दिया। सन् 2013 में जब यह छानबीन शुरु हुई थी तब से इस मामले में गिरफ़्तारियों में 2,000 से अधिक लोग शामिल रहे हैं। अगस्त 2016 में सीबीआई ने 60 व्यक्तियों के विरुद्ध औपचारिक शिकायतें दर्ज की तथा एक छात्र उम्मीदवार और एक छद्मरूप-धारक के ख़िलाफ़ अभियोग दाख़िल किए। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों में से कुछ को ज़मानत दे दी। सीबीआई द्वारा 5 वर्षों की अवधि के दौरान 48 व्यक्तियों की मौतों की भी तहक़ीकात की जा रही थी, जिनमें एक ऐसा पत्रकार भी शामिल था जिसने इस कथित धोखेबाज़ी की रिपोर्ट दी थी। 13 फरवरी को, सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश के 600 से अधिक डॉक्टरी के छात्रों का दाख़िला रद्द कर दिया जिनके बारे में उनका विचार था कि उन्होंने पास होने के लिए परीक्षा अनाचार का इस्तेमाल किया।

10 अप्रैल को, भ्रष्टाचार विरोधी ब्यूरो (एसीबी) ने एक भूमि सौदे में कथित भ्रष्टाचार के लिए महाराष्ट्र के भूतपूर्व कृषि और राजस्व मंत्री एकनाथ खडसे, उनकी पत्नी, दामाद, और पुणे में एक सहायक के विरुद्ध शिकायत दर्ज की। 8 मार्च को राज्य सरकार ने अदालत को सूचित किया कि एसीबी यह तहक़ीकात स्थानीय पुलिस से अपने हाथ में ले लेगा। खडसे ने जून 2016 में मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया था जब यह आरोप सामने आए। वर्ष की समाप्ति तक इस मामले में कोई नई जानकारी नहीं थी।

वित्तीय प्रकटीकरण: क़ानून के अनुसार भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में सभी अधिकारियों के लिए संपत्ति की घोषणा करना ज़रूरी है। चुनाव आयोग और सर्वोच्च न्यायालय दोनों ने चुनाव उम्मीदवारों के लिए आपराधिक और वित्तीय लेखा जोखा प्रकट करने की बाध्यता का समर्थन किया।

खंड 5. मानवाधिकारों के कथित दुरूपयोंगों की अंतर्राष्ट्रीय और ग़ैर-सरकारी जांच के बारे में सरकारी रवैया

अधिकांश घरेलू और अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दल आमतौर पर किसी सरकारी अवरोध के बिना कार्यरत रहे, और मानवाधिकार मामलों की जांच पड़ताल करते रहे और अपने निष्कर्ष प्रकाशित करते रहे। कुछ परिस्थितियों में इन दलों को पाबंदियों का सामना करना पड़ा। सरकारी अधिकारियों ने सामान्यतः एनजीओ के अनुरोधों पर समुचित ध्यान दिया। सामाजिक न्याय, संधारणीय विकास, और मानवाधिकारों की वकालत करने वाले देश में 30 लाख से अधिक एनजीओ थे। आमतौर पर सरकार घरेलू एनजीओ से मुलाक़ात करती,

उनके प्रश्नों के उत्तर देती, और उनकी रिपोर्टों अथवा सिफ़ारिशों के जवाब में क़दम उठाती रही। एनएचआरसी अनेकों एनजीओ के साथ सहयोगशीलता से कार्य करता रहा। एनएचआरसी की कई समितियों में एनजीओ का भी प्रतिनिधित्व था। जम्मू और कश्मीर राज्य में मानवाधिकारों पर निगाह रखने वाले प्रबोधक मानवाधिकार उल्लंघनों का लेखा-जोखा रख सकते थे, लेकिन ख़बर है कि कभी-कभी सुरक्षा बलों, पुलिस, और अन्य क़ानून प्रवर्तन अधिकारियों ने उन्हें बाधित या परेशान किया।

कुछ ख़ास अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार एनजीओ के प्रतिनिधियों को कभी-कभी वीज़ा प्राप्त करने में कठिनाइयां पेश आईं, और उनका कहना था कि कभी कभार सरकारी संतापन और पाबंदियों के कारण उनका सामग्री का सार्वजनिक वितरण सीमित हुआ।

10 जुलाई को सर्वोच्च न्यायालय ने सक्रिय वादियों तीस्ता सीतलवाड़, जावेद आनंद, तथा सिटीज़न्स फ़ॉर जस्टिस एण्ड पीस से जुड़े उनके सहकर्मियों की भ्रष्टाचार तथा निधि दुरुपयोग के अभियोगों से राहत देने की उनकी याचिका अस्वीकार कर दी। गुजरात में पुलिस अधिकारियों का आरोप था कि इन सक्रियवादियों ने 15 लाख रुपए (24,000 डॉलर) की उस राशि का ग़बन कर लिया जो सन् 2002 के गुजरात दंगों के शिकार लोगों के लिए एक स्मारक निर्मित करने के लिए एकत्र की गई थी। सक्रियवादियों का कहना था कि अधिकारियों ने दंगा पीड़ितों की ओर से उनके काम के प्रतिशोध में उन पर यह मुक़दमा दायर किया।

<u>संयुक्त राष्ट्र संघ या अन्य अंतरराष्ट्रीय निकाय</u>: सरकार ने उत्तर पूर्वी राज्यों और माओवादी नियंत्रित क्षेत्रों तक संयुक्त राष्ट्र संघ की पहुंच को सीमित करना जारी रखा।

<u>सरकार के मानवाधिकार निकाय</u>: एनएचआरसी एक स्वतंत्र और निष्पक्ष अनुसंधान करने वाली और सलाह देने वाली संस्था है जो, मानवाधिकार उल्लंघनों की घटनाओं की जांच पड़ताल करने और उन्हें दूर करने तथा मानवाधिकारों के बारे में सार्वजनिक जागरूकता को बढ़ावा देने के दोहरे शासनादेश के साथ, केंद्रीय सरकार द्वारा स्थापित की गई है। यह सीधे संसद के प्रति जवाबदेह है, लेकिन गृह मंत्रालय तथा क़ानून और न्याय मंत्रालय के निकट सहयोग में काम करती है। इसे यह काम सौंपा गया है कि मानवाधिकारों के शासकीय उल्लंघनों अथवा उल्लंघनों को रोकने में हुई लापरवाही पर ध्यान दे, मानवाधिकार उल्लंघन के आरोपों से संबद्ध न्यायिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप करे, तथा ऐसे हर तत्व पर (आतंकवाद के कृत्यों सहित) पुनर्विवेचन करे जो मानवाधिकारों का अतिक्रमण करता हो। क़ानून एनएचआरसी को सम्मन जारी करने, साक्ष्य देने पर बाध्य करने, दस्तावेज़ पेश करने, और सार्वजनिक रिकॉर्डों की मांग करने का अधिकार देता है। एनएचआरसी सरकार द्वारा हत्याओं के पीड़ितों या उनके परिवारों को मुआवज़ा दिए जाने के रूप में दुर्व्यवहारों के समुचित इलाज के लिए सिफ़ारिश भी करता है। इसके पास न तो अपनी सिफ़ारिशों के कार्यान्वयन के लिए बाध्य करने का अधिकार है, और न ही सेना और अर्धसैनिक कार्मिकों के ख़िलाफ़ आरोपों पर ध्यान देने का अधिकार है।

मानवाधिकार दलों का दावा था कि ये सीमाएं एनएचआरसी के काम में व्यवधान डालती हैं। कुछ मानवाधिकार एनजीओ ने बजट के लिए एनएचआरसी की सरकार पर निर्भरता की तथा एक वर्ष से अधिक पुराने दुर्व्यवहारों की तहक़ीकात न करने की उसकी नीति की आलोचना की। कुछ का दावा था कि एनएचआरसी ने सभी शिकायतें दर्ज नहीं कीं, मामलों को मनमाने ढंग से ख़ारिज किया, मामलों की पूर्णरूपेण जांच नहीं की, शिकायतों को वापस कथित उल्लंघनकर्ता के पास भेज दिया, और शिकायत करने वालों की पर्याप्त हिफ़ाज़त नहीं की।

29 में से चौबीस राज्यों में मानवाधिकार आयोग हैं, जो एनएचआरसी के तत्वावधान में स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं। 6 राज्यों में अध्यक्ष का पद रिक्त बना रहा। कुछ मानवाधिकार दलों का आरोप था कि स्थानीय राजनीति ने राज्य समितियों को प्रभावित किया, और एनएचआरसी के मुक़ाबले उनसे निष्पक्ष निर्णय प्राप्त होने की संभावना कम थी।

राज्य मानवाधिकार समितियों के देशव्यापी अपने मूल्यांकन के दौरान, मानवाधिकार क़ानून नेटवर्क (एचआरएलएन) ने पाया कि अधिकांश राज्य समितियों में अल्पसंख्यकों, सभ्य समाज, या महिला प्रतिनिधि या तो थे ही नहीं या इने गिने थे। एचआरएलएन का दावा था कि ये समितियां निष्प्रभाव थीं और कभी-कभी पीड़ितों के प्रति शत्रुतापूर्ण थीं, एवं राजनीतिक नियुक्तियों, और कर्मिकों की तथा निधीयन की कमी के कारण बाधित थीं।

जम्मू-कश्मीर आयोग को परा-सैन्य सुरक्षा बलों के सदस्यों द्वारा किए गए कथित मानवाधिकार उल्लंघनों की छानबीन करने का अधिकार नहीं है। एनएचआरसी के अधिकार-क्षेत्र में मानवाधिकारों के सभी उल्लंघन आते हैं, केवल ऐसे कुछ ख़ास मामलों को छोड़कर जिनमें सेना का उलझाव हो। एनएचआरसी को उत्तर-पूर्वी राज्यों तथा जम्मू और कश्मीर राज्य में एएफ़एसपीए के तहत कार्यरत गृह मंत्रालय के परा-सैन्य बलों द्वारा किए गए मानवाधिकार उल्लंघनों की तहक़ीकात करने का अधिकार है।

खंड 6. भेदभाव, समाज के दुर्व्यवहार, तथा व्यक्तियों का अवैध व्यापार

महिलाएं

<u>बलात्कार और घरेलू हिंसा</u>: क़ानून में बलात्कार को अधिकांश मामलों में अपराध माना गया है, हालांकि वैवाहिक बलात्कार तब ग़ैरक़ानूनी नहीं है जब महिला 15 वर्ष से अधिक उम्र की हो। आधिकारिक आंकड़े इस ओर इशारा करते हैं कि बलात्कार देश का सबसे तेज़ी से बढ़ रहा अपराध है, जिसका कम-से-कम आंशिक प्रेरक यह है कि पीड़ितों में बलात्कार की रिपोर्ट करने की तत्परता बढ़ रही है, हालांकि पर्यवेक्षकों का विश्वास है कि अब भी बलात्कार के बहुत से मामलों की रिपोर्ट नहीं की जाती।

बलात्कार पीड़ितों के लिए क़ानून प्रवर्तन और क़ानूनी सहारा अपर्याप्त, अधिक बोझ तले दबा हुआ, तथा कारगर ढंग से समस्या से निपटने में अक्षम था। पुलिस अधिकारियों ने कई बार बलात्कार पीड़ितों और उन पर हमला करने वालों के बीच मेल मिलाप कराने का प्रयत्न किया, और कुछ मामलों में बलात्कार पीड़ित महिलाओं को प्रोत्साहन दिया कि वे उन पर हमला करने वालों से शादी कर लें। एनजीओ वकील संघ ने ध्यान दिलाया कि मुक़दमों की लंबाई, पीड़ितों को समर्थन का अभाव, तथा पीड़ितों और गवाहों के लिए अपर्याप्त संरक्षण चिंता के मुख्य कारण बने रहे। डॉक्टरों ने यौन इतिहास के बारे में अटकलबाजी के लिए "दो उंगली डालकर देखने" की आक्रामक जाँच जारी रखी, बावजूद इसके कि सर्वोच्च न्यायालय ने यह फ़ैसला दिया है कि यह जाँच पीड़ित के गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन करती है। सन् 2015 में सरकार ने यौन हिंसा पीड़ितों की डॉक्टरी जांच के लिए स्वास्थ्य व्यवसायिकों के लिए नये दिशा निर्देश प्रस्तुत किए। इनमें परीक्षा के विभिन्न चरणों के दौरान पीड़ित की सहमति के बारे में प्रावधान शामिल थे, जिनके बारे में कुछ एनजीओ का दावा था कि ये घटनाओं को दर्ज करने के मामले में एक सुधार है।

जम्मू और कश्मीर राज्य, उत्तर-पूर्व, झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसे संघर्ष वाले इलाकों में महिलाएं, और साथ ही दलित तथा जनजाति की भेद्य महिलाएं, अक्सर बलात्कार या बलात्कार की धमकियों का शिकार बनीं। राष्ट्रीय अपराध आंकड़ों से संकेत मिलता है कि अन्य जाति वालों की तुलना में दलित महिलाएं अधिक अनुपात में शिकार बनीं।

घरेलू हिंसा एक समस्या बनी रही। महिलाओं के विरुद्ध तेज़ाब हमलों के परिणाम में मौतें और स्थायी रूप-विकृति सामने आई। इस वर्ष के दौरान छत्तीसगढ़ ऐसा पहला राज्य बना जिसने अपने सभी 27 ज़िलों में, व्यथित महिलाओं के लिए एक ही स्थान पर सब सुविधाएं उपलब्ध करने वाले "सखी केंद्र" स्थापित किए, जिन्हें महिला और बाल विकास मंत्रालय से संघीय निधि की सहायता मिलती है। ये केंद्र उन महिलाओं को चिकित्सीय, क़ानूनी, परामर्श की, तथा आश्रय सेवाएं उपलब्ध कराते हैं जो विभिन्न प्रकार की हिंसा का सामना कर रही हों, लेकिन मुख्यतः दहेज विवाद और यौन हिंसा संबंधी घरेलू हिंसा का। एनसीआरबी का अनुमान है कि महिलाओं के विरुद्ध अपराधों में दोषसिद्धि की दर 18.9 प्रतिशत थी।

सन् 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने सभी निजी अस्पतालों को निर्देश दिया कि वे तेज़ाब हमलों का शिकार होने वालों को चिकित्सीय सहायता उपलब्ध कराएं। 2016 में चेन्नई में इस नीति का कार्यान्वयन शुरू हुआ। अप्रैल में सरकार ने ऐलान किया कि 2016 के विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों के क़ानून की व्यवस्थाओं में तेज़ाब हमलों के शिकार लोगों को भी शामिल किया जाएगा।

बलात्कार, तेज़ाब हमलों, बच्चों के विरुद्ध अपराध, और मानव व्यापार सहित, अपराध के शिकार लोगों को मिलने वाले मुआवज़ों में असमानता को कम करने के लिए जुलाई 2016 में केंद्र सरकार ने एक संशोधित केंद्रीय पीड़ित मुआवज़ा कोष योजना चालू की।

महिला जननेंद्रिय अंगच्छेद/काटना (एफ़जीएम/सी): कोई भी राष्ट्रीय क़ानून एफ़जीएम/सी प्रथा को संबोधित नहीं करता। मानवाधिकार दलों और मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, 70 से 90% दाऊदी बोहरा लोग एफ़जीएम/सी के रिवाज को अपनाते हैं, जिनकी लगभग 10 लाख की आबादी महाराष्ट्र,गुजरात, राजस्थान, और दिल्ली में केंद्रित है।

26 जून को, सर्वोच्च न्यायालय ने एफ़जीएम/सी पर निषेध लगाए जाने की मांग में एक सार्वजनिक हित मुक़दमेबाजी (पीआईएल) याचिका दाखिल किए जाने के बाद, राष्ट्रीय सरकार तथा दिल्ली, गुजरात, महाराष्ट्र, और राजस्थान सरकारों से इस बारे में प्रतिक्रिया मांगी। मई में महिला और बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने कहा कि एफ़जीएम/सी को एक दंडनीय अपराध बनाया जाना चाहिए।

अन्य हानिकारक पारंपरिक रिवाज: क़ानून दहेज उपलब्ध कराने या स्वीकार करने की मनाही करता है, लेकिन परिवारों ने दहेज लेना-देना जारी रखा, और दहेज संबंधी झगड़े एक गंभीर समस्या बने रहे। एनसीआरबी के आंकड़े दर्शाते हैं कि सन् 2015 में दहेज संबंधी मौतों के लिए अधिकारियों ने 19,973 लोगों को गिरफ़्तार किया।

"सुमंगली योजनाओं" ने अनुमातः 120,000 युवा नारियों को प्रभावित किया। ये योजनाएं, जो "सुखी विवाहित महिला" के लिए तमिल शब्दावली पर आधारित है, एक प्रकार का बंधुआ श्रम है जिनमें युवतियां या लड़कियां दहेज के लिए धन कमाने के लिए काम करती हैं ताकि विवाह कर सकें। 80,000 से 100,000 रुपये (1300 से 1600 डॉलर) तक का एकमुश्त मुआवज़ा दिए जाने का वादा किया जाता है, जो 3 से 5 वर्ष तक के रोज़गार के लिए आमतौर पर अंत तक रोक कर रखा जाता है। लेकिन कई बार यह मुआवज़ा या तो दिया ही नहीं गया या आंशिक रूप से अदा किया गया। बंधुआ श्रम में फंसे होने के दौरान, बताया जाता है कि नौकरी-दाताओं ने इन औरतों को कार्यस्थल पर गंभीर दुर्व्यवहारों का शिकार बनाया -- आने जाने और संचार की स्वतंत्रता पर कड़ी पाबंदियां, यौन दुराचार, यौन शोषण, सेक्स व्यापार, और मार डालने तक। सुमंगली बंधुआ मजदूरों में से अधिकांश अनुसूचित जातियों (एससी) से थीं, और उनमें से दलित, निम्नतम श्रेणी के अरुंथाथियार, और देश के उत्तरी भाग से आए प्रवासियों को, नौकरीदाताओं द्वारा विशेष रूप से दुर्व्यवहार का शिकार बनाया गया। अधिकारियों ने सुमंगली कारखानों में श्रम संगठन बनाने की अनुमति नहीं दी, और बताया जाता है कि कुछ सुमंगली श्रमिकों ने बदले की कार्रवाई के डर से दुर्व्यवहारों की रिपोर्ट नहीं की। एनजीओ वान मुहिल द्वारा

2014 में किए गए इस विषय के अध्ययन में इन श्रमिकों की स्वास्थ्य समस्याओं और श्रम परिस्थितियों का विवरण दिया गया है जिनमें बताया गया है कि शारीरिक तथा यौनिक शोषण शामिल था। सन् 2016 में मद्रास उच्च न्यायालय ने तमिलनाडु सरकार को सुमंगली योजनाओं की वैधता का मूल्यांकन करने का आदेश दिया। यह स्पष्ट नहीं है कि राज्य ने अदालत के आदेश का पालन किया या नहीं।

अधिकांश राज्यों ने दहेज निषेध अधिकारी तैनात किए। सन् 2010 के सर्वोच्च न्यायालय के एक फ़ैसले के अनुसार मुक़दमा सुनने वाली सभी अदालतों के लिए यह अनिवार्य है कि वह दहेज-मौत के मामले में प्रतिवादियों पर हत्या का अभियोग लगाएं।

तथाकथित सम्मान हेतु हत्या एक समस्या बनी रही, विशेषकर पंजाब, उत्तर प्रदेश और हरियाणा में। इन राज्यों में लिंग-चयन के कारण गर्भपातों की वजह से लड़कियों के जन्म का अनुपात भी नीचा रहा। 21 अगस्त को सर्वोच्च न्यायालय ने एनजीओ शक्ति वाहिनी तथा खाप पंचायतों से परिवार के सम्मान के नाम पर युवा जोड़ों को मार दिए जाने और उनका उत्पीड़न रोकने के उपायों के बारे में सुझाव मांगे। ऐसी हत्याओं के लिए अभियुक्तों या उनके परिवार वालों द्वारा यह सफ़ाई दिया जाना सबसे आम था कि लड़की ने अपने परिवार की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ शादी की।

तेलंगाना में संदिग्ध सम्मान हत्या के एक मामले में, पुलिस ने 13 मार्च को निचली जाति के एक दलित पुरुष को चोटों के कारण मृत पाया। दलित अधिकार संगठनों ने पुलिस की इस दलील को अस्वीकार कर दिया कि यह आत्महत्या का मामला था और दावा किया कि इस मौत में ऊंची जाति की एक लड़की के परिवार वालों का उलझाव है। प्रतिवादों और इन आरोपों के बाद की इस कार्रवाई पर पर्दा डालने में एक स्थानीय संसद सदस्य का उलझाव है, हैदराबाद उच्च अदालत ने 6 अप्रैल को एक और शव-परीक्षा का आदेश दिया। वर्ष के अंत तक इस मामले में कोई नई जानकारी सामने नहीं आई थी।

ऐसी रिपोर्टें थीं कि हिंदू देवताओं से प्रतीकात्मक विवाह की "देवदासी" प्रथा में औरतें और लड़कियां पुजारियों तथा मंदिर-संरक्षकों के हाथों बलात्कार या यौन दुराचार का शिकार बनीं, जो कि यौन व्यापार का ही एक रूप है। एनजीओ का कहना था कि कुछ एससी लड़कियों को परिवार वाले विवाह में दहेज की संभावना और घर का वित्तीय बोझ कम करने के लिए मंदिरों में वेश्यावृत्ति में धकेल देते हैं। मंदिर सेवा में लगी स्त्रियों और लड़कियों के साथ यौन दुर्व्यवहार या वेश्यावृत्ति पर लगाम लगाने के लिए कुछ राज्यों में क़ानून हैं। लेकिन इन क़ानूनों का प्रवर्तन ढीला-ढाला रहा, और समस्या व्यापक थी। कुछ प्रेक्षकों का अनुमान था की मंदिर संबंधी वेश्यावृत्ति में लगी औरतों और लड़कियों की संख्या 450,000 से भी अधिक थी।

जादू-टोने के आरोपों को संबोधित करने वाला कोई संघीय क़ानून नहीं है; लेकिन जादू-टोने के आरोपों से पीड़ित लोगों के लिए अधिकारी अन्य क़ानूनी प्रावधानों का एक विकल्प के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं। बिहार, ओडिशा, छत्तीसगढ़ राजस्थान, असम, और झारखंड में ऐसे क़ानून हैं जो औरों पर जादू-टोने का आरोप लगाने

वालों को अपराधी ठहराते हैं। अधिकांश रिपोर्टों में कहा गया कि आमतौर पर गांव वाले और स्थानीय परिषदें उन लोगों को गांव से निषिद्ध कर देते हैं जिन पर जादू-टोने का आरोप हो।

यौन उत्पीड़न: यौन उत्पीड़न एक गंभीर समस्या बना हुआ है। अधिकारियों ने राज्य के ऐसे सभी विभागों और संस्थानों के लिए, जिनमें 50 से अधिक कर्मचारी काम करते हैं, यौन उत्पीड़न को रोकने और उससे निपटने के लिए, जिसे अक्सर "लड़कियों के साथ छेड़खानी" कहा जाता है, समितियां संचालित करने का आदेश दिया है।

जनसंख्या नियंत्रण में जबरदस्ती: जबरन और अनैच्छिक बंध्यकरण की रिपोर्टें थीं।

ऐसी रिपोर्टें थीं कि स्वास्थ्य कर्मियों के भुगतान ढांचे और निजी सुविधाओं के लिए बीमा भुगतानों के कारण कुछ महिलाओं पर डिंबवाहिनी नलिका-बंदी, गर्भाशय विच्छेदन, या बंध्यीकरण के अन्य तरीके अपनाने के लिए दबाव डाला गया। ऐसा लगता है कि यह दबाव गरीब और निचली जाति की महिलाओं को अनुपातहीन रूप से प्रभावित करता है। सितंबर 2016 में सर्वोच्च न्यायालय ने 3 वर्ष के भीतर सभी बंध्यीकरण शिविर बंद कर दिए जाने का आदेश दिया।

देश में असुरक्षित गर्भपात, मातृ मृत्यु, और जबरदस्ती परिवार नियोजन प्रथाओं-- जिनमें जबरन या अनैतिक बंध्यीकरण तथा दो बच्चों से अधिक की मां होने पर महिलाओं के लिए हकदारियों तक पहुंच को बाधित करने वाली नीतियां शामिल हैं-- से सम्बद्ध मौतें होना जारी रहा। 2 से अधिक बच्चों वाले परिवारों को दंडित करने की नीतियां और दिशानिर्देश पहलें सात राज्यों में लागू रहे, लेकिन कुछ अधिकारियों ने उन्हें प्रवर्तित नहीं किया। कुछ राज्यों ने उन वयस्कों के लिए जिनके पास दो से ज़्यादा बच्चे नहीं हैं सरकारी नौकरियों और आर्थिक सहायता के लिए सरकारी आरक्षण, तथा जिनके दो से अधिक बच्चे हों उन वयस्कों के लिए आर्थिक सहायता तथा स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच में कमी करना जारी रखा।

राजस्थान उन 11 राज्यों में से एक है जिन्होंने स्थानीय स्तर पर निर्वाचित अधिकारियों के लिए दो बच्चों की सीमा अंगिकार की है, और इस क़ानून को सन् 1992 में स्वीकार करने वाला पहला राज्य था। इस क़ानून को पलट देने या संशोधित करने के राज्य स्तर के प्रयासों के बावजूद, वर्ष के दौरान यह ज्यूं का त्यूं बना रहा। एनजीओ लॉयर्स कलैक्टिव के अनुसार, ऐसी नीतियां अक्सर परिवारों को अपने दूसरे बच्चे के लिए लिंग चयन करने को उकसाती है ताकि उनके यहां कम से कम एक बेटा हो और राजनीतिक पद के लिए भावी पात्रता का भी उन्हें बलिदान न करना पड़े।

हालांकि राष्ट्रीय स्वास्थ्य अधिकारियों ने ध्यान दिलाया की जनसंख्या मामलों पर राज्य सरकारों के निर्णयों के नियमन का केंद्रीय सरकार के पास कोई अधिकार नहीं है, लेकिन केंद्र सरकार राज्य-स्तर के प्रजनन-स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए दिशा-निर्देश तैयार करती है और धन उपलब्ध कराती है। सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय में राज्य स्तर पर बंध्यीकरण सेवाओं के लिए बढ़िया देख-भाल उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय सरकार को

ज़िम्मेदार माना गया। लगभग सभी राज्यों ने "बेटी प्रोत्साहन" कार्यक्रम शुरू किए, जिनका लक्ष्य लिंग-चुनाव का मुक़ाबला करना है, जिनमें से कुछ में मां-बाप के लिए लाभ प्राप्त करने के लिए बन्ध्यीकरण प्रमाणपत्र को ज़रूरी बनाया गया था।

सरकार ने परिवार नियोजन के एक तरीके के रूप में दशकों तक महिला बंध्यीकरण को बढ़ावा दिया, और इसके परिणाम स्वरूप, देश में महिला बंध्यीकरण कुल गर्भनिरोध उपायों का 86 प्रतिशत हिस्सा था। गर्भनिरोध के उपलब्ध उपायों में चयन का विस्तार करने के हाल के प्रयासों के बावजूद, सरकार ने कई बार स्थायी महिला बंध्यीकरण को इतना बढ़ावा दिया कि गर्भनिरोध के वैकल्पिक उपाय पीछे छूट गए।

मातृ मृत्यु तथा गर्भनिरोधक उपायों के प्रचलन संबंधी आंकड़े www.who.int/reproductivehealth/publications/monitoring/maternal-mortality-2015/en/. पर उपलब्ध हैं।

भेदभाव: क़ानून कार्यस्थल पर भेदभाव की मनाही करता है और समान कार्य के लिए समान वेतन की मांग करता है, लेकिन नौकरीदाताओं ने अक्सर समान कार्य के लिए महिलाओं को पुरुषों से कम वेतन दिया, रोज़गार तथा कर्ज़ के आवेदनों में महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव किया, और महिलाओं को पुरुष के मुक़ाबले कम बार पदोन्नति दी।

बहुत सी जनजाति भूमि प्रणालियों में, जिनमें बिहार भी शामिल है, क़बायली औरतों को भूमि का स्वामी होने के अधिकार से वंचित रखा जाता है।

जनवरी 2016 में बिहार सरकार ने सभी स्तरों पर राज्य सरकार की नौकरियों में महिलाओं के लिए 35 प्रतिशत का कोटा निर्धारित करने का अनुमोदन किया।

लिंग-पक्षपात वाला लिंग चयन: सबसे ताज़ा जनगणना (2011) अनुसार, जन्म के समय लड़का-लड़की लिंग के अनुपात का राष्ट्रीय औसत 1,000 के मुकाबले 943 था। क़ानून जन्म-पूर्व लिंग-चयन की मनाही करता है, लेकिन अधिकारियों ने बिरले ही इसे लागू किया।

बच्चे

जन्म पंजीकरण: क़ानून जन्म पंजीकरण के लिए राज्य सरकारीय प्रक्रियाएं स्थापित करता है। यूएनआईसीईएफ़ का अनुमान था कि अधिकारियों ने हर वर्ष राष्ट्रीय जन्मों के 58 प्रतिशत का पंजीकरण किया। जिन बच्चों के पास राष्ट्रिकता या पंजीकरण ना हो, वे सार्वजनिक सेवाओं तक पहुंच, स्कूलों में भर्ती, या जीवन में बाद में शिनाख़्त दस्तावेज़ प्राप्त नहीं कर पाते।

<u>शिक्षा</u>: संविधान में 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा का प्रावधान है, लेकिन सरकार ने इस मांग को हमेशा ही पूरा किया हो, ऐसा नहीं है। एनजीओ प्रथम के 2016 के *शिक्षा संबंधी वार्षिक सर्वेक्षण* में ध्यान दिलाया गया है कि उत्तर प्रदेश, बिहार, मणिपुर, पश्चिम बंगाल,और मध्यप्रदेश राज्यों में स्त्री-छात्रा उपस्थिति की दर 50 से 60 प्रतिशत रही।

स्कूल से बाहर बच्चों के राष्ट्रीय सर्वेक्षण की 2014 की रिपोर्ट के अनुसार, विकलांगता पीड़ित 6 से 13 की आयु के बच्चों में 28 प्रतिशत स्कूल नहीं गए।

<u>बाल दुर्व्यवहार</u>: क़ानून बाल दुर्व्यवहार की मनाही करता है, लेकिन यह बच्चों का ध्यान रखने वालों द्वारा दुर्व्यवहार, लापरवाही, यह मनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहार को दंडनीय अपराध नहीं मानता। हालांकि इसकी मनाही है, लेकिन अध्यापक अक्सर शारीरिक सजाएं देते हैं। सरकार जनता को बाल दुर्व्यवहार के ख़िलाफ़ पर्याप्त रूप से शिक्षित करने अथवा क़ानून को लागू करने में अक्सर नाकाम रही।

मई में मानवीय सहायता संगठन वर्ल्ड विज़न इंडिया ने 26 राज्यों में 12 से 18 वर्ष की आयु के 45,844 बच्चों का सर्वेक्षण किया और पाया कि हर दो में से एक बच्चा यौन दुर्व्यवहार का शिकार था। काउंसिल टू सिक्योर जस्टिस ने रिपोर्ट दी कि बच्चों के साथ यौन दुर्व्यवहार के मामलों में से करीब 30 प्रतिशत कौटुंबिक व्यभिचार से जुड़े हुए थे, और कुल मिलाकर बच्चों के साथ यौनिक दुर्व्यवहार के 99 प्रतिशत मामलों की रिपोर्ट नहीं की गई।

सरकार ने संकट में फंसे बच्चों के लिए 640 साझेदारों के साथ काम करते हुए 402 स्थानों पर 24 घंटे की नि:शुल्क टेलीफोन सेवा को प्रवर्तित किया।

<u>अल्पायु और जबरन विवाह</u>: क़ानून विवाह के लिए महिलाओं के लिए 18 और पुरुषों के लिए 21 वर्ष की वैध आयु निर्धारित करता है, और यह अदालतों को बाल-विवाहों को रद्द कर देने की शक्ति देता है। यह उन लोगों के लिए दंड भी निर्धारित करता है जो इस तरह के विवाहों की व्यवस्था करें, उन्हें अंजाम दें, या उनमें भाग लें। अधिकारियों ने इस क़ानून को सुसंगत रूप से लागू नहीं किया और न ही जबरदस्ती शादी में धकेली गई लड़कियों के बलात्कार को संबोधित किया। क़ानून ऐसी शादी को जिसमें लड़की 18 से कम या लड़का 21 से कम उम्र का हो "ग़ैरक़ानूनी" क़रार नहीं देता, लेकिन ऐसे विवाहों को अमान्य ठहराए जाने योग्य मानता है। अंतर्राष्ट्रीय तथा स्थानीय एनजीओ के अनुसार प्रक्रिया संबंधी सीमाओं मैं अधिकांश परिस्थितियों में विवाहित अवयस्कों के लिए कोई क़ानूनी इलाज कर पाना वस्तुतः असंभव बना दिया।

क़ानून में बाल विवाह को रोकने और उस पर निगाह रखने के लिए हर राज्य में एक पूर्णकालिक बाल-विवाह निषेध अधिकारी नियुक्त किए जाने की व्यवस्था है। इन व्यक्तियों को जब बाल विवाह हो रहा हो तो हस्तक्षेप

करने, क़ानून उल्लंघन का लिखित प्रमाण तैयार करने, मां-बाप के ख़िलाफ़ अभियोग दाखिल करने, बच्चों को ख़तरनाक स्थिति से हटाने, और उन्हें स्थानीय बाल-संरक्षण अधिकारियों को सौंपने का अधिकार प्राप्त है।

मई में कर्नाटक ने हर बाल विवाह को अवैध घोषित करने के लिए मौजूदा विधान में संशोधन किया और पुलिस को विशिष्ट क़दम उठाने का अधिकार दिया।

20 जुलाई को महिला और बाल विकास राज्यमंत्री कृष्णा राज ने संसद के उच्च सदन को सूचित किया कि एनएफएचएस-4 से प्राप्त 2015-16 के आंकड़े दर्शाते हैं कि 20 और 24 वर्ष के बीच की आयु वाली उन महिलाओं के प्रतिशत में कमी आई है जिनकी 18 वर्ष से कम आयु में शादी हो गई थी।

बच्चों का यौन शोषण: क़ानून बाल अश्लीलता चित्रण पर निषेध लगाता है और सहमति देने की क्षमता के लिए 18 वर्ष की आयु तय करता है। किसी नाबालिग के साथ यौन कर्म के लिए धन देना, किसी नाबालिग को वेश्यावृत्ति या किसी भी प्रकार के "अवैध यौन मैथुन" के लिए प्रवृत्त करना, या वेश्यावृत्ति के लिए किसी अवयस्क को बेचना या खरीदना ग़ैरक़ानूनी है। उल्लंघन-कर्ताओं के लिए 10 वर्ष के कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।

दिल्ली की सभी छह अदालतों में बाल यौन दुर्व्यवहार के मामलों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतें मौजूद थीं। लेकिन सभ्य समाज ग्रुपों ने पाया कि मुक़दमों की बड़ी संख्या के कारण, न्यायाधीशों की समयोचित रूप से मामलों की सुनवाई करने की क्षमता गंभीर रूप से सीमित हुई।

बाल सैनिक: इस बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं थी कि 18 वर्ष से कम आयु के कितने लोग सशस्त्र सेनाओं में काम कर रहे थे। एनजीओ का अनुमान था कि माओवादी प्रभावित क्षेत्र में विद्रोही सशस्त्र दलों से सम्बद्ध बच्चों और साथ ही जम्मू-कश्मीर राज्य में विद्रोही ग्रुपों में बाल-सैनिकों की कुल संख्या कम से कम 2,500 थी। ऐसे भी आरोप थे कि सरकार-समर्थित माओवाद-विरोधी ग्रामीण रक्षा बल बच्चों को भर्ती करते हैं (देखें खंड-1. जी., बाल सैनिक)।

विस्थापित बच्चे: विस्थापित बच्चों को, जिनमें शर्णार्थी, आईडीपी, और स्ट्रीट चिल्ड्रन शामिल हैं, सरकारी सेवाओं तक पहुंच प्राप्त करने में प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा (खंड-2. डी. भी देखें)

संस्थानों में रहने वाले बच्चे: क़ानून के ढुल-मुल प्रवर्तन और सुरक्षोपायों के अभाव के कारण अनाथालयों और बहुत से सामूहिक-गृहों में दंडाभाव के वातावरण को बढ़ावा मिला।

कोलकाता अनुसंधान दल ने रिपोर्ट दी कि कई बार पुलिस ने पश्चिम बंगाल राज्य में भारत-बांग्लादेश सीमा पर रोके गए परिवारों के बच्चों को नाबालिग न्याय गृहों में दाखिल करके, जहाँ उन्हें अपने परिवारों तक सीमित और प्रतिबंधित पहुंच ही प्राप्त थी, उन्हें परिवारों से अलग कर दिया।

अंतर्राष्ट्रीय बाल अपहरण: भारत अंतर्राष्ट्रीय बाल अपहरण के नागरिक पहलुओं के बारे में सन् 1980 के हेग समझौते में शामिल नहीं है। देखें अमेरिकी विदेश मंत्रालय की *अंतरराष्ट्रीय पैतृक बाल अपहरण के बारे में वार्षिक रिपोर्ट* travel.state.gov/content/childabduction/en/legal/compliance.html. पर

यहूदी विरोध

4,650 सदस्यों वाले यहूदी समुदाय के यहूदी ग्रुपों ने वर्ष के दौरान यहूदी विरोध के किसी भी कृत्य की कोई रिपोर्ट नहीं दी।

लोगों का अवैध व्यापार

देखें अमेरिकी विदेश मंत्रालय की *लोगों के अवैध व्यापार के बारे में रिपोर्ट* www.state.gov/j/tip/rls/tiprpt/. पर।

असमर्थता पीड़ित लोग

संविधान में असमर्थ का विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं है। क़ानून में विभिन्न असमर्थताओं के शिकार लोगों के लिए समान अधिकारों की व्याख्या है, और असमर्थता के शिकार लोगों के अधिकारों के बारे में सन् 2016 के अधिनियम में मान्यता-प्राप्त असमर्थताओं की संख्या में विस्तार किया गया है, जिसमें पार्किंसन रोग तथा तेज़ाब-हमला भी शामिल हैं। क़ानून ने असमर्थता के शिकार लोगों को भौतिक अवसंरचना और सार्वजनिक परिवहन प्रणाली तक निर्बाध नि:शुल्क पहुंच प्रदान करने के लिए सरकार के लिए 2 वर्ष की समय-सीमा तय की।

क़ानून सभी शैक्षणिक स्थानों का 3 प्रतिशत और सरकारी नौकरियों का 4 प्रतिशत असमर्थता के शिकार लोगों के लिए आरक्षित भी करता है। जून 2016 में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को निर्देश दिया कि 4 प्रतिशत के आरक्षण को सरकार के सभी पदों तक विस्तारित किया जाए। जून में सरकार के एक पैनल ने यह निर्णय लिया की असमर्थता का शिकार लोगों की ज़रूरतों को बेहतर ढंग से पूरा करने के लिए निजी समाचार नेटवर्कों को अपने सार्वजनिक प्रसारणों के साथ इंगित भाषा में सारांश तथा लिखित अनुशीर्षक शामिल करने होंगे। सरकार ने नौकरियां भरने की संख्या बढ़ाने के लिए कार्यक्रमों तथा साझेदार एनजीओ के लिए कोष भी निर्धारित किए।

इन प्रयासों के बावजूद, समस्याएं बनी रहीं। सरकारी प्रोत्साहनों के बावजूद, निजी क्षेत्र के रोज़गारों में असमर्थता के शिकार लोगों को कम ही नौकरियां मिलीं।

रोज़गार, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच के संबंध में असमर्थता के शिकार लोगों के ख़िलाफ़ भेदभाव ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक व्याप्त था, और असमर्थता के शिकार लोगों की देश की कुल आबादी में से 45 प्रतिशत

अनपढ़ थे। सार्वजनिक इमारतों के लिए अभिगम्यता सीमित थी। इमारतों और सड़कों तक अभिगम्यता के बारे में एक पीआईएल फ़ाइल सर्वोच्च न्यायलय में लंबित थी।

स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग के एक कार्यक्रम ने असमर्थता पीड़ित छात्रों के लिए विशेष शिक्षक और संसाधन केंद्र उपलब्ध कराए। मुख्यधारा विद्यालय समावेशी शिक्षा में प्रशिक्षित अध्यापकों, साधन सामग्री, और समुचित पाठ्यक्रम से अपर्याप्त रूप से ही सज्जित रहे।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय का अनुमान था की मानसिक असमर्थता के शिकार लोगों में से 25 प्रतिशत बेघर थे।

कुछ मानसिक स्वास्थ्य संस्थानों में रोगियों को भोजन की कमियों, सफ़ाई की अपर्याप्त स्थितियों, और पर्याप्त चिकित्सा सेवा के अभाव का सामना करना पड़ा। एचआरडब्ल्यू ने रिपोर्ट दी की असमर्थता की शिकार महिलाओं और लड़कियों को कभी-कभी उनकी इच्छा के विरुद्ध जबरन मानसिक अस्पताल में दाखिल किया गया।

जून 2016 में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को निर्देश दिया कि 4 प्रतिशत आरक्षण को सरकार के सभी पदों तक विस्तारित किया जाए।

राष्ट्रीय/जातीय/प्रजातीय अल्पसंख्यक

संविधान जातीय भेदभाव की मनाही करता है। सरकार द्वारा निचली जातियों के लोगों को सशक्त बनाने के कार्यक्रमों के चलते, सकारात्मक कार्रवाई कार्यक्रमों के उद्देश्य से जातियों और जन-जातियों का पंजीकरण जारी रहा। जाति के आधार पर भेदभाव व्याप्त रहा, ख़ास तौर पर ग्रामीण इलाकों में।

"सताए गए" या "कुचले गए" के लिए संस्कृत से लिया गया शब्द "दलित", ऐसे लोगों की ओर इशारा करता है जो उन जातियों के सदस्य हैं जिन्हें समाज हिंदुओं की सबसे निचली जातियां, अनुसूचित जातियां(एससी), मानता है। एससी के बहुत से सदस्यों को सामाजिक प्रगति प्राप्त करने में बाधाओं का सामना करना पड़ता रहा जिसमें शिक्षा, रोज़गार, न्याय तक पहुंच, आने-जाने की स्वतंत्रता, और संस्थानों तथा सेवाओं तक पहुंच शामिल है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार, एससी के सदस्य आबादी का 70 प्रतिशत (लगभग 20 करोड़ व्यक्ति) हिस्सा थे।

हालांकि क़ानून दलितों की हिफ़ाज़त करता है, लेकिन हिंसा और स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, मंदिरों में जाने, और विवाह जैसी सेवाओं तक पहुंच में उल्लेखनीय भेदभाव की बहुत सी रिपोर्टें सामनेइन आईं। बहुत से दलित कुपोषण का शिकार थे। अधिकांश बंधुआ मजदूर दलित थे। जिन दलितों ने अपने अधिकारों का दावा किया उन्हें अक्सर हमलों का शिकार बनना पड़ा, ख़ास तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में। ऊंची जाति के ज़मींदारों के लिए

कृषि-श्रमिकों के रूप में काम करने वाले दलितों को, ख़बर है कि अक्सर मजदूरी मिले बिना ही काम करना पड़ा। जातीय भेदभाव उन्मूलन संबंधी संयुक्त राष्ट्र संघ समिति की रिपोर्टों में दलितों के साथ बाकायदा दुर्व्यवहार का विवरण दिया गया है, जिसमें न्यायेतर हत्याएं और दलित महिलाओं के विरुद्ध यौन हिंसा शामिल है। बताया जाता है कि दलितों के विरुद्ध अपराध अक्सर अदंडित रहे, या तो इसलिए कि अधिकारी अपराध-कर्ताओं पर मुक़दमा चलाने में नाकाम रहे, या फिर इसलिए कि पीड़ितों ने बदले की कार्रवाई के डर से अपराध की शिकायत ही नहीं की।

एनजीओ ने व्यापक भेदभाव की रिपोर्ट दी जिसमें दलितों के लिए सार्वजनिक मार्गों पर चलने, जूते-चप्पल पहनने, जहां ऊंची जाति के लोग रहते हों वहां के सार्वजनिक नलों से पानी लेने, मंदिरों में कुछ त्यौहारों में भाग लेने, सार्वजनिक तालाबों में नहाने, या कुछ ख़ास श्मशान घाटों का इस्तेमाल करने की मनाही शामिल है। उदाहरण के लिए, गुजरात में, ख़बर है कि दलितों को मंदिरों में प्रवेश नहीं करने दिया गया, और शैक्षणिक तथा रोज़गार संबंधी अवसरों से वंचित किया गया।

एनजीओ ने रिपोर्ट दी कि कई बार दलित छात्रों को उनकी जाति के कारण कुछ ख़ास स्कूलों में दाख़िला नहीं दिया गया या उनसे दाख़िले से पहले जाति-प्रमाणपत्र पेश करने को कहा गया। ऐसी रिपोर्टें थीं कि स्कूल अधिकारियों ने दलित बच्चों के लिए सुबह की प्रार्थनाओं में भाग लेने पर रोक लगाई, दलित बच्चों को कक्षा में सबसे पीछे बैठने को कहा, या उन्हें स्कूल के शौचालयों को साफ़ करने पर बाध्य किया, जबकि उन्हें उन्हीं शौचालय के इस्तेमाल की अनुमति नहीं दी। ऐसी भी रिपोर्टें थीं कि अध्यापकों ने दलित बच्चों के होमवर्क की जांच करने से इनकार किया, दलित बच्चों को दोपहर का खाना देने से इनकार किया, और दलित बच्चों को ऊंची जाति के परिवारों के बच्चों से अलग बैठने को कहा।

उत्तर प्रदेश में निचली जाति के दलित समर्थक दल, भीम सेना, के समर्थकों को अप्रैल में ऊंची जाति के संगठन-बद्ध ठाकुर ज़मींदारों के हाथों हिंसा का सामना करना पड़ा। ख़बर है कि हिंसा में बहुत से लोगों को चोटें आई और दलितों के 50 से अधिक घर जला दिए गए। मई में, भीम सेना के नेतृत्व में, हज़ारों दलितों ने हिंसा के विरुद्ध प्रदर्शन किया। जब दोनों समुदायों के बीच आमना-सामना होने की वारदातें फैल गईं, तो पुलिस ने भीम सेना के सक्रियवादियों को, जिनमें उनका नेता चंद्रशेखर आज़ाद भी शामिल था, गिरफ़्तार कर लिया। ख़बर है कि राज्य की पुलिस ने उच्च-जाति के किसी भागीदार को हिरासत में नहीं लिया।

संघीय और राज्य सरकारों ने निचली जाति-समूहों के सदस्यों को बेहतर-किसम के आवास, स्कूलों में कोटा, सरकारी नौकरियां, तथा आर्थिक-सहायता-प्राप्त भोजन तक पहुंच प्रदान करने के लिए कार्यक्रमों को लागू करना जारी रखा। आलोचकों का दावा था कि इनमें से बहुत से कार्यक्रम घटिया कार्यान्वयन और/अथवा भ्रष्टाचार से पीड़ित थे।

भंगी या मेहतर का पेशा--दलितों द्वारा जानवर या मानवीय अपशिष्ट की हाथों से सफ़ाई का काम-- इस पर क़ानूनी निषेध के बावजूद, जारी रहा। एनजीओ सक्रियवादियों का दावा था कि हाथों से अपशिष्ट-सफ़ाई करने वाले अधिकांश लोगों को, जो दलित आबादियों और अन्य पिछड़े वर्गों से सम्बद्ध थे, निर्वाचित ग्राम परिषदों ने काम पर लगा रखा था। मीडिया ने किसी सुरक्षा-उपस्कर के बिना गंदे नालों और मैनहोलों की सफ़ाई करते लोगों के चित्र और इस बारे में लेख नियमित रूप से प्रकाशित किए। 16 मार्च को सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण मंत्रालय ने बताया कि 13 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में हाथों से अपशिष्ट-सफ़ाई करने वाले 12,737 लोग थे। एनजीओ का कहना था कि वास्तविक संख्या इससे ज़्यादा है।

एचआरडब्ल्यू ने रिपोर्ट दी कि भंगियों/मेहतरों के बच्चों को भेदभाव, शर्मिंदगी, और गांव के स्कूलों में पृथक्करण का सामना करना पड़ता है। हाथों से अपशिष्ट सफ़ाई-कर्ताओं को अपने पेशे के कारण अक्सर ऐसे संक्रमणों के संपर्क में आने का जोखिम उठाना पड़ता है जिनसे उनकी त्वचा, आंखों, श्वास प्रणाली, तथा पाचन-तंत्र पर दुष्प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य व्यवसायियों का कहना था कि ऐसे बैक्टीरिया के संपर्क में आने वाले बच्चे अक्सर स्वस्थ शारीरिक-भार नहीं बनाए रख पाते, और उन्हें अवरुद्ध-शारीरिक-विकास भुगतना पड़ता है।

क़ानून हाथों से अपशिष्ट साफ़ करने वालों को काम पर रखने की अथवा निर्जल (प्रक्षालन विहीन) शौचालयों के निर्माण की मनाही करता है, और इसके लिए एक वर्ष तक के कारावास, 2000 रुपये (32 डॉलर) के जुर्माने, या दोनों सज़ाएं दिए जाने का प्रावधान है।

आदिवासी लोग

संविधान आदिवासी लोगों के वंचित समुदायों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की व्यवस्था करता है। क़ानून आदिवासी व्यक्तियों को विशेष दर्जा प्रदान करता है, लेकिन अधिकारियों ने अक्सर उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा।

अधिकांश उत्तर-पूर्वी राज्यों में, जहां आदिवासी समूह राज्यों की आबादी का अधिकांश हिस्सा थे, क़ानून जन-जातीय अधिकारों की व्यवस्था करता है, हालांकि कुछ स्थानीय अधिकारियों ने उन व्यवस्थाओं की अनदेखी की। क़ानून किसी गैर-क़बायली व्यक्ति को, जिनमें अन्य राज्यों के नागरिक शामिल हैं, एक वैध अनुमति-पत्र के बिना सरकार-स्थापित अंदरूनी सीमा पार करने की मनाही करता है। कोई भी आरक्षित क्षेत्रों से इजाज़त के बिना रबड़, हाथी दांत, मोम, या अन्य वन्य-उत्पाद नहीं ले जा सकता। ग़ैर-क़बायली लोगों को भूमि की बिक्री का जनजातीय अधिकारियों द्वारा अनुमोदन किया जाना अनिवार्य है।

यौनिक अभिमुखता और लिंग शिनाख़्त के आधार पर हिंसा, भेदभाव, तथा अन्य दुर्व्यवहार के कृत्य

क़ानून सम-लैंगिक सेक्स को अपराध ठहराता है। देश हीजड़ों (पुरुष-से-स्त्री परलिंगी लोग) को, पुरुष और महिलाओं से भिन्न, तीसरे लिंग के रूप में मान्यता देता है। स्त्री समलिंगी, पुरुष समलिंगी, द्विलिंगी, परालिंगी तथा अंतर-सेक्स (एलजीबीटीआई) लोगों को शारीरिक हमलों, बलात्कार, और भयादोहन का सामना करना पड़ता है। कुछ पुलिसवालों ने एलजीबीटीआई लोगों के ख़िलाफ़ अपराध किए और गिरफ़्तारी का डर दिखाकर पीड़ितों को घटनाओं की रिपोर्ट न करने के लिए मजबूर किया। एनजीओ की सहायता से, कई राज्यों ने पुलिस के लिए शिक्षा और संवेदनशीलता प्रशिक्षण के अवसर उपलब्ध कराए।

एलजीबीटीआई दलों ने रिपोर्ट दी कि उन्हें व्यापक स्तर पर सामाजिक भेदभाव और हिंसा का सामना करना पड़ा, ख़ास तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में। सक्रियवादियों ने रिपोर्ट दी कि ऐसे परालिंगी लोगों को, जो एचआईवी प्रभाव-युक्त हैं, चिकित्सीय इलाज प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा।

जनवरी 2015 में एक उच्च अदालत ने उन याचिकाओं को ख़ारिज कर दिया जिनमें सन् 2013 में सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय को चुनौती दी गई थी जिसने समलिंगी सेक्स को अपराध ठहराने वाले औपनिवेशिक-युग के क़ानूनी प्रावधान को पुनर्स्थापित कर दिया था। उसके बाद अब वह उस निर्णय पर पुनर्विचार करने को सहमत हो गई है। इसके अतिरिक्त, अगस्त में दिए गए इस निर्णय में कि देश के नागरिकों को गोपनीयता का संवैधानिक अधिकार प्राप्त है, सर्वोच्च न्यायालय ने यौन अभिमुखता को "गोपनीयता का एक अनिवार्य लक्षण" बताया था।

फरवरी में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने यौन शिक्षा से संबंधित संसाधन सामग्री, *साथिया शिक्षा योजना* 2017 का अनावरण किया था, जिसमें इस बात को मान्यता दी गई कि लोग किसी भी व्यक्ति के प्रति आकर्षण महसूस कर सकते हैं चाहे वह समान लिंग का हो या विपरीत लिंग का।

अप्रैल में के. प्रीतिका याशिनी, धरमपुरी, तमिलनाडु में, पुलिस बल में शामिल होने वाली भारत की पहली परालिंगी व्यक्ति बन गई। उसे शुरू में पुलिस सेवा में रोज़गार देने से इंकार कर दिया गया था, जबकि बाद में मद्रास उच्च न्यायालय ने मामले में हस्तक्षेप किया और उसके हक़ में फ़ैसला सुनाया।

मई में केरल सरकार ने कोच्चि में 21 परालिंगी नागरिकों को नौकरी पर रखा, लेकिन कई हफ़्ते बाद उन परालिंगी कर्मचारियों में से बहुतों ने नौकरी छोड़ दी, क्योंकि बताया जाता है कि उन्हें अपनी लिंग-पहचान के कारण कोच्चि में रिहायशी जगह किराए पर लेने में कठिनाई का सामना करना पड़ा।

एचआईवी तथा एड्स, सामाजिक कलंक का टीका

पिछले दशक के दौरान एचआईवी के नए मामलों की संख्या में 57 प्रतिशत की कमी आई है। यह महामारी सर्वाधिक भेद्य आबादियों के बीच बनी रही: अधिक जोखिम वाले दल, जिनमें नारी यौन-कार्मिक; पुरुषों के साथ यौन-क्रिया करने वाले पुरुष; परालिंगी व्यक्ति; और सूई के ज़रिए दवाएं लेने वाले लोग शामिल हैं।

इसके अलावा, कुछ राज्यों में एंटीरेट्रोवाइरल औषधि भंडार रिक्त हो जाने के कारण इलाज में व्यवधान पड़ा। 11 अप्रैल को सरकार ने एचआईवी तथा एड्स (निवारण और नियंत्रण) बिल पास किया। यह बिल स्वास्थ्य सेवा, रोज़गार, शिक्षा, आवास, आर्थिक भागीदारी, या राजनीतिक प्रतिनिधित्व के संबंध में भेदभाव रोकने के लक्ष्य से बनाया गया है।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम ने अधिक-जोखिम वाले दलों के लिए एचआईवी रोकथाम, देख-भाल, और चिकित्सीय हस्तक्षेप को, तथा एचआईवी के साथ जीवन बिता रहे लोगों के अधिकारों को प्राथमिकता दी। राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम संगठन ने महिलाओं के एचआईवी/एड्स स्व-सहायता दलों को प्रशिक्षण देने में सक्रिय रुप से एनजीओ के साथ मिलकर काम किया।

पुलिस ने मानवाधिकार उल्लंघनों तथा एचआईवी के प्रति भेद्य समुदायों की हिफ़ाज़त करने में अपनी भूमिका को मजबूत बनाने के कार्यक्रमों को अपनाया।

अन्य सामाजिक हिंसा या भेदभाव

धर्म और जाति पर आधारित तथा धार्मिक रूप से संगठित दलों द्वारा सामाजिक हिंसा, चिंता का एक गंभीर विषय बना रहा। गृह मंत्रालय के 2016-17 के आंकड़े दर्शाते हैं कि सांप्रदायिक (धार्मिक) हिंसा की 703 घटनाएं हुईं जिनमें 86 लोग मारे गए और 2,321 घायल हुए।

26 जुलाई को, संसद के उच्च सदन में घृणा-जनित अपराधों के जवाब में एक बयान जारी किया जिसमें उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के नागरिकों के लिए सुरक्षा और समावेश की अधिक उजागर भावना पैदा करने के लिए संघ तथा गृह मंत्रालय द्वारा सक्रिय क़दम उठाने जाने की आवश्यकता व्यक्त की गई। सर्वोच्च न्यायालय की एक सिफ़ारिश के जवाब में, ऐसी चिंताओं से निपटने के लिए एक समिति स्थापित की गई।

इस वर्ष गाय सम्बन्धी उग्र-चौकसी-दलों द्वारा हमलों की संख्या में वृद्धि सामने आई, जो विशिष्टतः हिंदू अतिवादियों से संबंधित थी। सन् 2010 से लेकर जिन 63 हमलों की रिपोर्ट मिली उनमें 61 मुसलमानों की

ओर लक्षित थे, और इन हमलों में मारे गए 28 लोगों में से 24 मुसलमान थे। एचआरडबल्यू के अनुसार, सन् 2015 से लेकर गो- उग्र-चौकसी-दलों द्वारा हिंसा के परिणाम में कम से कम 10 मुसलमानों की मौत हुई है, जिनमें 12 वर्ष की आयु का एक लड़का शामिल है। कई मामलों में पुलिस ने गो-वध की मनाही करने वाले मौजूदा क़ानूनों के तहत हमले के शिकार लोगों के ख़िलाफ़ आरोप दाख़िल किए। एक स्वतंत्र पत्रकारिता इकाई इंडिया-स्पेंड की एक रिपोर्ट के अनुसार भीड़ द्वारा अल्पसंख्यकों की हत्या की घटनाएं झारखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, और उत्तर प्रदेश में घटीं। इस वर्ष के पहले 6 महीनों में गो-रक्षा सम्बन्धी उग्र-चौकसी-दलों द्वारा 20 हमलों की रिपोर्ट सामने आई जो सन् 2016 के मुकाबले 75 प्रतिशत की वृद्धि है।

मीडिया रिपोर्टों के अनुसार 22 जून को हरियाणा में भीड़ ने एक ट्रेन में 16 वर्षीय जुनैद ख़ान को यह आरोप लगाते हुए छुरे से मार डाला कि वह और उसके 3 साथी गो-मांस ले जा रहे थे। हरियाणा पुलिस ने इस मामले के संबंध में छह आरोपी व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया। 9 जुलाई को महाराष्ट्र पुलिस ने नरेश कुमार को गिरफ़्तार कर लिया, जो कि मामले में मुख्य संदिग्ध है, और अगस्त तक, 6 अभियुक्तों में से चार को ज़मानत दे दी गई थी।

11 सितंबर को, संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार संबंधी उच्च आयुक्त ज़ैद राद-अल-हुसैन ने मानवाधिकार परिषद के 36वें उद्घाटन सत्र में कहा कि वह देश में धार्मिक तथा अन्य अल्पसंख्यकों के प्रति असहिष्णुता में अधिक व्यापक वृद्धि से निराश हुए हैं। उन्होंने कहा, “गायों की जीवन-रक्षा के नाम पर भीड़ द्वारा लोगों के ख़िलाफ़ हिंसक, और अक्सर घातक, हमलों की मौजूदा लहर भयप्रद है।"

खंड 7. कर्मिक अधिकार

ए. संघ बनाने और सामूहिक सौदेबाज़ी के अधिकार की स्वतंत्रता

क़ानून संघ बनाने और उनमें शामिल होने तथा सामूहिक रुप से सौदेबाज़ी करने का अधिकार देता है, हालांकि नौकरीदाताओं के लिए संघ को मान्यता देने अथवा सामूहिक सौदेबाज़ी में भाग लेने का कोई क़ानूनी दायित्व नहीं है। सिक्किम राज्य में, श्रमिक संघ पंजीकरण के लिए राज्य सरकार से पूर्व अनुमति प्राप्त करने की शर्त थी। क़ानून संघीय और राज्य सरकार के कर्मचारियों के संगठन बनाने के अधिकारों पर सीमाएं लगाता है।

क़ानून हड़ताल करने का अधिकार देता है लेकिन कुछ कर्मिकों के लिए इस अधिकार पर पाबंदियां लगाता है। मिसाल के तौर पर, निर्यात संसाधन क्षेत्रों (ईपीज़ी) में 45 दिन का नोटिस दिए जाने की ज़रूरत है क्योंकि ईपीज़ी को "सार्वजनिक जनोपयोगी सेवाओं" का नाम दिया गया है। क़ानून सरकार को सरकारी मिल्कियत वाले उद्यमों में हड़तालों पर निषेध लगाने का भी अधिकार देता है तथा विशेष रूप से उल्लिखित "अनिवार्य

उद्योगों" मैं पंच-फ़ैसला अनिवार्य बनाता है। अलग-अलग राज्यों में अनिवार्य उद्योगों की परिभाषाओं में अंतर है। क़ानून श्रम-संघ-विरोधी भेद-भाव तथा वैध हड़तालों में भाग लेने पर बदले की कार्रवाई पर निषेध लगाता है , तथा श्रम संघ गतिविधि के लिए नौकरी से निकाल दिए गए कर्मचारियों की काम पर बहाली की व्यवस्था करता है।

इस क़ानून का प्रवर्तन एक राज्य से दूसरे राज्य तथा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अलग-अलग था। अधिक बड़े, सुव्यवस्थित क्षेत्र के उद्योगों में आमतौर पर क़ानून का प्रवर्तन बेहतर था। अधिकारियों ने औद्योगिक क्षेत्र में वैध श्रम-संघ गतिविधियों को दबाने या डराने-धमकाने के लिए ज़िम्मेदार लोगों पर सामान्यतः मुक़दमे चलाए और उन्हें सज़ाएं दीं। नागरिक न्यायिक प्रक्रिया के जरिए दुर्व्यवहारों से निपटा गया क्योंकि श्रम-संघ क़ानून ऐसे दुर्व्यवहारों के लिए दंड निर्धारित नहीं करता। विशिष्ट श्रम अदालतें श्रम संबंधी झगड़ों का निपटारा करती हैं, लेकिन लंबे विलंब देखने को मिले और अनसुलझे मुक़दमों का ढेर लगा हुआ था।

औपचारिक औद्योगिक क्षेत्र में नौकरीदाताओं ने संघ बनाने की स्वतंत्रता तथा संगठन और सामूहिक सौदेबाज़ी के अधिकार का आमतौर पर सम्मान किया, लेकिन बड़ी, अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में ऐसा नहीं हुआ। अधिकांश संघ के सदस्य औपचारिक क्षेत्र में काम कर रहे थे, और श्रमिक संगठनों ने कृषि तथा अनौपचारिक क्षेत्र के कर्मिकों की छोटी सी संख्या का प्रतिनिधित्व किया। संगठन-बद्ध श्रमिकों में से अनुमानत: 80 प्रतिशत श्रमिक पांच प्रमुख श्रम संगठन संघों में से किसी एक से संबद्ध थे। श्रम संगठन सरकार से स्वतंत्र थे, लेकिन पांच में से चार प्रमुख श्रम संघ प्रमुख राजनीतिक पार्टियों से जुड़े हुए थे। श्रम और रोज़गार मंत्रालय के अनुसार, सन् 2015 में 163 हड़तालें हुई। राज्य और स्थानीय अधिकारियों ने कभी-कभी हड़तालों को अवैध घोषित करने और निर्णयादेश मानने पर मजबूर करने के लिए अपनी शक्ति का इस्तेमाल किया। सदस्यता-आधारित संगठनों ने, जैसे कि स्वयं अपने रोज़गार में लगी महिलाओं का संघ, अनौपचारिक-क्षेत्र के श्रमिकों को सफलतापूर्वक संगठित किया और अपने काम या उत्पादों के लिए अधिक भुगतान प्राप्त करने में उनकी सहायता की।

31 मई को, हरियाणा में, रोहतक में ऐसिन मोटर कार कंपनी के 425 कार्मिकों को तब गिरफ़्तार कर लिया गया जब वे उन सहकर्मिकों को नौकरी से निकाले जाने का प्रतिवाद कर रहे थे जो एक श्रमिक-संगठन बनाना चाहते थे। गिरफ़्तार किए गए कर्मिकों पर, हमला करने और सरकारी अधिकारियों के काम में बाधा डालने का आरोप लगाया गया और उन्हें ज़मानत पर रिहा कर दिया गया। श्रमिक दलों ने रिपोर्ट दी कि कुछ नौकरीदाता स्थापित श्रमिक-संगठनों को मान्यता देने से इनकार करते रहे और कुछ ने, इसके स्थान पर, "श्रमिक समितियां" और नौकरीदाता-नियंत्रित श्रमिक संगठन स्थापित किए ताकि स्वतंत्र श्रमिक-संघों का गठन रोका जा सके। ईपीज़ी ने अक्सर कर्मिकों को अस्थायी अनुबंधों पर काम पर रखा। इसके अतिरिक, ईपीज़ी में केवल-कर्मिकों-के-प्रवेश संबंधी पाबंदियों ने श्रमिक संगठनकर्ताओं की पहुंच को सीमित किया। 22 अगस्त को, सरकारी

मिल्कियत वाले बैंकों के लगभग 10 लाख कर्मचारी संघीय सरकार की विभिन्न बैंकों के विलय की योजनाओं के प्रतिवाद में हड़ताल पर चले गए।

बी. जबरन या अनिवार्य श्रम की मनाही

क़ानून सभी प्रकार के जबरन या अनिवार्य श्रम की मनाही करता है, लेकिन यह समस्या, जिसमें बंधुआ बाल-श्रम शामिल है (देखें खंड 7. सी.), व्यापक रूप से फैली रही।

बंधुआ मज़दूरों की संख्या के बारे में अनुमानों में व्यापक अंतर था, हालांकि कुछ एनजीओ ने यह संख्या करोड़ों में बताई। अधिकांश बंधुआ मज़दूरी कृषि क्षेत्र में मौजूद रही। भारी बंधुआ मज़दूरी वाले ग़ैर-कृषि क्षेत्र थे पत्थर उत्खनन खदानें, ईंटों के भट्टे, चावल मिलें, भवन निर्माण, कशीदाकारी की फैक्ट्रियां, और बीड़ी उत्पादन।

प्रवर्तन और पीड़ितों के लिए मुआवज़े की ज़िम्मेदारी राज्य तथा स्थानीय सरकारों पर है और प्रभावकारिता में अंतर था। सरकार ने आम तौर पर बंधुआ श्रम प्रणाली (उन्मूलन) क़ानून जैसे बंधुआ श्रम क़ानूनों या श्रम के अवैध व्यापार क़ानूनों को कारगर ढ़ंग से लागू नहीं किया। जब निरीक्षकों ने उल्लंघनों को मुक़दमा चलाया जाने के लिए प्रेषित किया तो अदालतों में मुक़दमों के ढेर, मुक़दमों के अपर्याप्त परिचालन, और प्राथमिकता के अभाव के कारण कई बार लोग बरी हो गए। अभियोजन कभी कभार ही हुए।

श्रम और रोज़गार मंत्रालय ने बंधुआ श्रम से लड़ने के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के साथ मिलकर काम करना जारी रखा, जिसमें आंध्र प्रदेश और ओडिशा राज्य में बंधुआ श्रम के प्रति भेद्य श्रमिकों की ओर लक्षित "अभिसरण कार्यक्रम" शामिल है।

श्रम और रोज़गार मंत्रालय ने रिपोर्ट दी कि संघीय वित्त-पोषित, राज्य संचालित केंद्रीय तत्वावधान में चलने वाली इस योजना ने अप्रैल 2016 से इस मार्च तक की अवधि के दौरान 2,607 बंधुआ मज़दूरों की रिहाई का अवसर प्रदान किया। कुछ एनजीओ ने बचाकर निकाले गए बंधुआ श्रमिकों के लिए रिहाई प्रमाण-पत्र प्राप्त करने में विलंब होने की रिपोर्ट दी, जिनकी यह प्रमाणित करने के लिए ज़रूरत होती है कि नौकरीदाताओं ने उन्हें बंधुआ बना रखा था और ये उन्हें क़ानून के तहत मुआवज़ा प्राप्त करने का अधिकारी बनाते हैं। पुनर्वास कोष का वितरण सभी राज्यों में एक समान नहीं था। मई 2016 में, सरकार ने अपने बंधुआ श्रम पुनर्वास कार्यक्रम में संशोधन किया और पीड़ितों के लिए मुआवज़ा 20,000 रुपये (320 डॉलर) से बढ़ाकर 100,000 रुपये (1,600 डॉलर) पुरुष पीड़ितों के लिए, 200,000 रुपये (3,200 डॉलर) महिला और बाल पीड़ितों के लिए, तथा 300,000 रुपये (4,800 डॉलर) यौन शोषण का शिकार बताए गए महिला और बाल पीड़ितों के लिए कर दिया।

बंधुआ श्रम, ख़ासतौर पर ईंट भट्ठों में बंधुआ श्रम, कई राज्यों में चिंता का कारण बना रहा। मार्च में, उत्तर प्रदेश के अधिकारियों ने, एक एनजीओ के सहयोग से, राज्य के दो ईंट भट्ठों से 149 बंधुआ श्रमिकों को बचा कर निकाला।

10 मार्च को, कर्नाटक ज़िला अदालत ने ईंट भट्ठे के एक मालिक को 10 वर्ष के सश्रम कारावास की सज़ा सुनाई जिसने 12 कामगारों को बंधुआ श्रमिक बना रखा था। अदालत ने लगभग 15,500 रुपये (250 डॉलर) का जुर्माना इस बात के लिए लगाया कि उसने अपनी इमारत में बंधुआ श्रमिकों को काम पर रखा। अधिकारियों ने अपराधकर्ता पर बंधुआ श्रम प्रणाली (उन्मूलन) क़ानून और साथ ही भारतीय दंड संहिता की धारा 370 के तहत अभियोग लगाया था।

24 जुलाई को, बंधुआ श्रम उन्मूलन के लिए दिल्ली स्थित राष्ट्रीय अभियान समिति को एक शिकायत प्राप्त होने के बाद एक ईंट भट्ठे से लगभग 88 बंधुआ श्रमिकों को बचा कर निकाला गया जिनमें 25 बच्चे और 29 औरतें शामिल थीं।

देश के बहुत क्षेत्रों में एससी तथा एसटी के सदस्य पराधीनता की पारंपरिक व्यवस्थाओं के तहत जी रहे थे और काम कर रहे थे। हालांकि केंद्रीय सरकार ने जबरन श्रम की पराधीनता का लंबे समय पूर्व ही उन्मूलन कर दिया था, फिर भी ये सामाजिक वर्ग ग़रीब, तथा जबरन शोषण के प्रति भेद्य बने रहे, ख़ास तौर पर अरुणांचल प्रदेश में।

अमेरिकी विदेश मंत्रालय की *व्यक्तियों के अवैध व्यापार संबंधी रिपोर्ट* भी देखें www.dol.gov/ilab/reports/child-labor/findings/. पर

सी. बाल श्रम निषेध और रोज़गार की न्यूनतम आयु

सरकार ने 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को रोज़गार दिए जाने पर निषेध लगाने के लिए अगस्त 2016 में बाल श्रम (उन्मूलन) क़ानून में संशोधन किया। संशोधित क़ानून, खदानों को छोड़, 14 से 18 वर्ष की आयु के बच्चों को जोखिमपूर्ण काम के लिए रोज़गार देने की भी मनाही करता है। बच्चों को ज्वलनशील पदार्थों, विस्फोटोकों, या जैसाकि क़ानून में परिभाषित है, अन्य जोखिमपूर्ण सामग्री का इस्तेमाल करने की भी मनाही है। मार्च में श्रम और रोज़गार मंत्रालय ने जोखिमपूर्ण उद्योगों की सूची में ऐसे 16 उद्योग तथा 59 प्रक्रियाएं और शामिल कीं जिनमें 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को रोज़गार पर रखने की मनाही है और जहां 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों से सहायता लेने की मनाही है, जिसमें परिवार की मिल्कियत वाले उद्यम शामिल हैं। लेकिन क़ानून

परिवार की मिल्कियत वाले ऐसे उद्यमों में, जो ग़ैर-जोखिमपूर्ण गतिविधियों में लगे हों, बच्चों के, स्कूल के घंटों के बाद, काम करने की इजाज़त है। फिर भी, बाल श्रम व्यापक रूप से फैला हुआ था।

राज्य सरकारों ने श्रम क़ानून लागू किए और श्रम-निरीक्षकों को काम पर रखा, जबकि श्रम और रोज़गार मंत्रालय ने निरीक्षण और समन्वयन प्रदान किया। फिर भी, उल्लंघन आम थे। संशोधित क़ानून में जोखिमपूर्ण उद्योगों में काम पर रखे गए हर बच्चे के लिए 20,000 रुपये (320 डॉलर) से लेकर 50,000 रुपये (800 डॉलर) तक के जुर्माने का प्रावधान है। ऐसे जुर्माने भय दिखा कर उल्लंघन रोकने के लिए अक्सर पर्याप्त नहीं रहे, और अधिकारियों ने उन्हें अनियमित रूप से लागू किया। ये जुर्माने पहले नौकरी पर रखे गए बच्चों के लिए एक कल्याण-कोष में जमा किए जाते हैं।

श्रम और रोज़गार मंत्रालय, नाटकों और सामुदायिक गतिविधियों जैसे, लोगों तक पहुंचने के विविध कार्यक्रमों के लिए धन देकर बाल-श्रम के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए राज्यों के साथ अपने प्रयासों का समन्वय करता है। 13 जून को, सरकार ने अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के दो प्रपत्र समझौतों, समझौता नंबर 138 और नंबर 182 का अनुमोदन किया जिनमे, क्रमानुसार, रोज़गार में प्रवेश की न्यूनतम आयु तय की गई है, और बाल-श्रम के सबसे बुरे रूपों पर निषेध लगाया गया है।

समाचार रिपोर्टों के अनुसार, राजस्थान सरकार के मानव-अवैध-व्यापार विरोधी यूनिट ने मई और जून में महीना-भर चले अभियान के दौरान कोटा, बूंदी, बरन और झालावाड़ ज़िलों में सड़क ढाबों, परचून की दुकानों, और वाहन-मरम्मत की दुकानों से 500 से अधिक बच्चों को बचाकर निकाला।

अधिकांश बाल-श्रम कृषि क्षेत्र तथा अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में, विशेषकर पत्थर की खदानों, बीड़ी-सिगरेट बनाने, तथा अनौपचारिक भोजन-सेवा प्रतिष्ठानों में पाया गया। बच्चों का व्यापारिक यौन-शोषण भी हुआ। (देखें खंड 6, बच्चे)।

वी. वी. गिरि राष्ट्रीय श्रम संस्थान ने रिपोर्ट दी कि देश में ऐसे मामलों की सबसे बड़ी संख्या वाले दो शहर थे- हैदराबाद जहां 67,366 बाल श्रमिक थे, और जलौर जहां यह संख्या थी 50,440.

बंधुआ श्रम सहित, जबरन बाल-श्रम भी एक गंभीर समस्या बना रहा। नौकरीदाताओं ने घरेलू नौकरों और भिखारियों के रूप में बच्चों को जबरन या बंधुआ श्रमिकों के रूप में काम पर रखा, और साथ ही खदानों, ईंट भट्ठों, चावल मिलों, रेशमी धागे के उत्पादन, और कपड़े पर कशीदाकारी में भी।

बाल श्रम के सबसे बुरे रूपों के बारे में श्रम विभाग के निष्कर्ष भी देखें www.dol.gov/ilab/reports/child-labor/findings/. पर

डी. रोज़गार और व्यवसाय के संबंध में भेदभाव

क़ानून और नियम रोज़गार और व्यवसाय के संबंध में जाति, लिंग, असमर्थता, भाषा, लैंगिक अभिमुखता, और/अथवा लिंग तादात्म्य, या सामाजिक दर्जे के आधार पर भेदभाव की मनाही करते हैं। क़ानून एचआईवी/एड्स या अन्य छूत की बीमारियों से पीड़ित व्यक्तियों, रंग, धर्म, राजनीतिक विचारों, राष्ट्रीय मूल, या राष्ट्रिकता के आधार पर भेदभाव की मनाही नहीं करता। सरकार ने औपचारिक क्षेत्र के भीतर क़ानून तथा नियमों को कारगर ढंग से लागू किया। लेकिन क़ानून और नियम उनकी हिफ़ाज़त नहीं करते जो अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत हैं, और जो देश के कर्मिक वर्ग का अनुमानत: 90 प्रतिशत हिस्सा हैं।

अनौपचारिक क्षेत्रों में दलितों, आदिवासी लोगों, और अक्षमता झेल रहे लोगों के संबंध में भेदभाव हुआ। क़ानूनी सुरक्षाएं सबके लिए समान हैं, लेकिन वेतन के संबंध में लिंग भेदभाव फैला हुआ था। विदेशी प्रवासी कर्मिक ज़्यादातर शिनाख़्त-दस्तावेज़-विहीन थे और सामान्यतः उन्हें वह क़ानूनी संरक्षण प्राप्त नहीं था जो देश के नागरिक कर्मिकों को उपलब्ध था।

ई. काम की स्वीकार्य परिस्थितियां

संघीय क़ानून सुरक्षा और स्वास्थ्य के मानक तय करता है, लेकिन राज्य सरकार के क़ानून न्यूनतम वेतन, काम के घंटे, तथा अतिरिक्त राज्य-विशिष्ट सुरक्षा और स्वास्थ्य मानक तय करते हैं। दैनिक न्यूनतम वेतन समान नहीं था लेकिन गरीबी स्तर की आय के सरकारी अनुमान से अधिक था। राज्य सरकारों ने कृषि कर्मिकों के लिए अलग न्यूनतम वेतन तय किया।

वेतन, घंटों, और व्यवसायिक स्वास्थ्य तथा सुरक्षा संबंधी क़ानून विशाल अनौपचारिक क्षेत्र पर लागू नहीं होते ।

क़ानून दिन में अधिकतम 8 घंटे काम और सप्ताह में 48 घंटे काम का, और साथ ही काम की सुरक्षित परिस्थितियों का आदेश देता है, जिसमें शौचालय, अल्पाहारगृहों, चिकित्सीय सुविधाओं, और वायुसंचार की व्यवस्था शामिल है। क़ानून 4 घंटे काम के बाद कम से कम 30 मिनट की विश्राम अवधि, तथा अतिरिक्त-समय काम के लिए अधिक वेतन दिए जाने का आदेश देता है, लेकिन इसमें छुट्टी के दिन के लिए वेतन दिए जाने का आदेश नहीं है। क़ानून अनिवार्य रूप से अतिरिक्त समय काम की मनाही करता है, लेकिन कोई कर्मिक कितने अतिरिक्त समय काम कर सकता है इसकी कोई सीमा नहीं है। व्यावसायिक सुरक्षा तथा स्वास्थ्य के जो मानक सरकार ने तय किए वे आमतौर पर अद्यावधिक थे और देश के प्रमुख उद्योगों पर लागू थे।

न्यूनतम वेतन, काम के घंटे और सुरक्षा तथा स्वास्थ्य मानक लागू करने के लिए राज्य सरकारें जिम्मेदार हैं। श्रम क़ानून लागू करने के लिए निरीक्षकों की संख्या आम तौर पर पर्याप्त नहीं थी। राज्य सरकारों ने कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम वेतन क़ानून को बहुधा कारगर ढ़ंग से लागू नहीं किया। सुरक्षा और स्वास्थ्य मानकों का प्रवर्तन घटिया दर्जे का था, खास तौर पर अनौपचारिक क्षेत्र में, लेकिन औपचारिक क्षेत्र के कुछ उद्योगों में भी। व्यावसायिक सुरक्षा और स्वास्थ्य मानकों के उल्लंघन के लिए 100,000 रुपए(1,600 डॉलर) के जुर्माने से लेकर 2 वर्ष के कारावास तक की सज़ाएं दी जा सकती हैं, लेकिन वे भय दिखाकर उल्लंघन रोकने के लिए पर्याप्त नहीं थीं।

वेतन, अतिरिक्त-समय काम, तथा व्यावसायिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य मानकों के उल्लंघन अनौपचारिक क्षेत्र में (वे उद्योग और/या प्रतिष्ठान जो फैक्ट्री क़ानून की सीमा में नहीं आते) आम थे, जहां कुल कर्मिकों में से अनुमानत: 90 प्रतिशत लोग काम करते हैं। निम्न प्रौद्योगिकी वाले, छोटे कारखानों में श्रमिकों को अक्सर काम की जोखिमपूर्ण परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। दस्तावेज़-विहीन विदेशी कर्मिकों को व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा के मूल संरक्षण प्राप्त नहीं हुए। बहुत से मामलों में श्रमिक, अपने रोज़गार को जोखिम में डाले बगैर, स्वयं को उन परिस्थितियों से अलग नहीं कर सके जो स्वास्थ्य और सुरक्षा को खतरे में डालने वाली थीं।

15 मार्च को, आंध्र प्रदेश में विजयवाडा नगर निगम के अनुबंध पर काम करने वाले दो सफ़ाई कर्मचारी एक भूगत मल-जल निकासी नाले के भीतर दम घुटने से मर गये। पुलिस ने उनके नौकरीदाता के ख़िलाफ़ लापरवाही के कारण मौत का मामला दर्ज किया। हाथ से अपशिष्ट-सफ़ाई के उन्मूलन के लिए लम्बे समय से अभियान चलाने वाले एनजीओ, सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन, के एक अनुमान के अनुसार 2014 से 2016 के बीच देश भर में अनुमानत: 1,500 व्यक्ति सेप्टिक टैंको को साफ़ करते हुए मर गये।

2016 की एशियाई मानवाधिकार आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार, हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने उस क़ानून के प्रवर्तन का आदेश दिया जो हाथों से अपशिष्ट साफ़ करने वालों को काम पर रखने की मनाही करता है, उनके पुनर्वास की मांग करता है, और गंदे नालों की हाथों से सफ़ाई करने पर निषेध लगाता है, लेकिन अधिकारियों ने बिरले ही इस क़ानून का प्रवर्तन किया। आयोग ने दलित अधिकारों के एक सक्रियवादी को उद्धृत किया जिसका दावा था कि हर वर्ष मैनहोलों के अंदर कम से कम 700 मौतें होती हैं।